DCESY-101
समाज और धर्म

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड–1 धर्म का अध्ययन		
इकाई–1	समाजशास्त्र तथा धर्म का अध्ययन	3
इकाई–2	धर्म के विकासवादी सिद्धान्त	13
इकाई–3	धर्म के प्रकार्यवादी सिद्धान्त	19
इकाई–4	धार्मिक विश्वासों का अध्ययन	25
इकाई–5	धार्मिक प्रतीकों का अध्ययन	31
खण्ड–2 धर्म के परिपेक्ष्य		
इकाई–6	अनुष्ठान का तुलनात्मक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त	39
इकाई–7	अनुष्ठान–1 अफ्रीका का एक केस अध्ययन	51
इकाई–8	अनुष्ठान–11 दक्षिण पूर्व एशिया का एक केस अध्ययन	61
इकाई–9	नागरिक धर्म	69
इकाई–10	धर्म एवं अर्थव्यवस्था	77
इकाई–11	धर्म और राजनीति/राज्य	85
खण्ड–3 धर्म और उससे सम्बंधित पक्ष		
इकाई–12	धार्मिक संगठन : मत, पंथ और सम्प्रदाय	94
इकाई–13	धार्मिक विशेषज्ञ : ओझा,पुरोहित और पैगम्बर	100
इकाई–14	धर्म सामाजिक स्थिरता और परिवर्तन	107
इकाई–15	कट्टरपंथ कुछ विशेष अध्ययन	115
इकाई–16	धर्मनिरपेक्षता तथा धर्मनिरपेक्षीकरण	122

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो. के.एन. सिंह (अध्यक्ष) — कुलपति
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. ए.के. गुप्ता — कुलसचिव
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक

प्रो. महेश शुक्ल — प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग
शासकीय टी.आर.एस महाविद्यालय, रीवा मध्यप्रदेश

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

डॉ. एम.एन. सिंह — पूर्व निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. इति तिवारी — पूर्व एसो. प्रोफेसर समाज विज्ञान विद्याशाखा
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. रमेश चन्द्र यादव — शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र, समाज विज्ञान विद्याशाखा
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

प्रो० विनोद रस्तोगी — समाजशास्त्र विभाग
राजकीय पी०जी० कालेज, मैहर, सतना

प्रो० सुरेश चन्द्र राय — प्रोफेसर
समाजशास्त्र शासकीय महाविद्यालय, सतना मध्य प्रदेश

डॉ० इति तिवारी — एसो० प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 रमेश चन्द्र यादव — शैक्षणिक परामर्शदाता, समाजशास्त्र विभाग
उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो० यशपाल व्यास — समाजशास्त्र विभाग
क्रिश्चियन कालेज, इन्दौर

डॉ० ध्रुव दीक्षित — एसो0 प्रो० रामाजशास्त्र विभाग
केसरवानी कॉलेज, जबलपुर, म.प्र.

प्रथम संस्करण–2019 (मुद्रित)

DCESY-101 समाज और धर्म

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN- 978-93-94487-284

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुन मुद्रित एवं प्रकाशित 2025

मुद्रक :चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा. लि. 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज.

इकाई–1

समाजशास्त्र तथा धर्म का अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 धर्म और समाजशास्त्र

1.3.1 धर्म की अवधारणा

1.3.2 धर्म की परिभाषा

1.3.3 धर्म की विशेषतायें

1.4 धर्म का समाजशास्त्रीय विकास

1.5 धर्म, जादू–टोना और विज्ञान

1.6 निष्कर्ष

1.7 प्रश्नावली

1.1 उददेश्य

''समाजशास्त्र और धर्म'' इकाई के अंर्तगत हमें धर्म के समाजशास्त्र के मूल आधार तत्वों और मापदण्डों को जानना होगा। इसमें हम निम्न मूल बातों को समझेंगे –

1. धर्म का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना ।
2. धर्म का दर्शन, समाजशास्त्रीय अर्थ, अवधारणा को जानना ।
3. धर्म के समाजशास्त्र के विकास को विवेचित करना ।
4. धर्म–परंपरा, जादू–टोना और विज्ञान में संबंध स्पष्ट करना ।

1.2 प्रस्तावना

धर्म एक महत्वपूर्ण अवधारणा (Concept) है। धर्म एक धारक तत्व है। 'धारणाद्धर्म मित्याहः धर्मो धारयते पूजा' महाभारत के इस कथन से स्पष्ट होता है कि धर्म ही पूजा है । सर्वपल्ली डॉ0 राधा कृष्णन के अनुसार – धर्म सम्पूर्ण विश्व का सत् है, विश्व की प्राणवान शक्ति (Elanvital) है। धर्म ही सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड के अस्तित्व का आधार है विश्व के रूप का विनाश तो हो सकता है लेकिन विश्व की सत्ता के भाव का नाश संभव नहीं है । इसीलिये विश्व की सत्ता का भाव ही धर्म का द्योतक कहलाता है। धर्म जीवन का सत्य है। धर्म की उपेक्षा करके कोई जीवित नहीं रह सकता । धर्म एक निरपेक्ष तत्व है।

समाजशास्त्र एक विज्ञान है और धर्म एक दर्शन। समाजशास्त्र, समाज के सम्बधों, सामाजिक क्रियाओं, समुदाय, संस्था का अध्ययन करता है वहीं धर्म का संबंध एक अदृष्य वस्तु से है अर्थात धर्म पवित्र है। एक वैयक्तिक मामला है। ऐसे में धर्म और समाजशास्त्र दोनों अलग–अलग अवधारणायें हैं ऐसे में समाजशास्त्र और धर्म का अध्ययन एक कठिन कार्य है। समाजशास्त्र के अध्येताओं ने धर्म को एक सामाजिक प्रक्रिया मानते धर्म की समाजशास्त्रीय व्याख्या की है। समाजशास्त्री धर्म के सिर्फ धार्मिक दार्शनिक पक्ष की ही व्याख्या नहीं करते है बल्कि ये धर्म का राजनैतिक, आर्थिक, तकनीकि और वैज्ञानिक विश्लेषण करके धर्म के विविध सम्बन्धों का विश्लेषण करते है। हॉफडिंग (Hoffding) के अनुसार ''धर्म मूल्यों की संरक्षा में विश्वास है। ''वही इमाइल दुर्खीम के अनुसार धर्म पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वासों और आचरणों की वह समग्र व्यवस्था है जो इस पर विश्वास करने वालों को एक नैतिक समुदाय में संयुक्त करती है। हॉफडिंग और दुर्खीम की परिभाषा से स्पष्ट होता है कि धर्म की आवश्यकता और उपयोगिता के मूल में सामाजिक कारण निहित है मनुष्य, सामाजिक संबंधों की समष्टि है और ये सामाजिक संबंध नैतिक मूल्यों का ताना–बाना है। धर्म से ही नैतिक मूल्यों का उद्भव हुआ है। नैतिक मूल्यों की स्थापना से समाज में स्थायित्व मिलने लगा और मानव संस्कृति सृजनशील होती गई। इसलिये राधाकृष्णन ने अपनी पुस्तक ''धर्म और समाज'' लिखा है कि धर्म हमारी आत्मा तक पहुँचता है और हमें बुराइयों से संघर्ष करना सिखाता है, अर्थात धर्म एक प्रकार की सामाजिक परिपूर्णता का प्रयास है''। यहाँ पर धर्म और समाजशास्त्र को जानने का प्रयास किया जा रहा है।

1.3 धर्म और समाजशास्त्र

धर्म एक विश्वास है, अनुशासन है। धर्म व्यक्ति को पूर्ण एवं परिपक्व बनाकर समाज में प्रगति के नये सोपान रचता है। धर्म वह अभिवृत्ति है, जो किसी समाज समाहत आदर्शपूर्ण विषय के प्रति आत्मसमर्पण एवं अन्तर्बद्धता हेतु व्यक्ति को सम्पूर्ण जगत के प्रति अभिमुख करती है। धर्म विवेकपरक होने के कारण सतत् रूप से गतिशील और विकासशील है। धर्म का तर्क के साथ अभियोजन होता है कुतर्क के साथ नहीं। कुतर्क, धर्म का परिष्कार न करके धर्म को ही परित्याग देता है। यह सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड का उन्नायक और सम्पोषक तत्व है तिससे व्यक्ति पूर्णता की दिशा में अग्रसर होने का सफल प्रयास करता है। वस्तुतः धर्म सत्य की अनुभूति है। सभी धर्म अपने–अपने ढंग से सत्य को खोजने का प्रयास करते हैं। टायलर के शब्दों में ''धर्म आध्यात्मिक सत्ता में विश्वास है'' मैक्स मूलर के अनुसार धर्म अफीम का साक्षात् ज्ञान है। जर्मन दार्शनिक इमेनुअल काण्ट के दृष्टिकोण में'' धर्म देसी अथवा ईश्वरीय आदेश के रूप में व्यक्ति के समस्त कर्तव्यों की मान्यता है।

जेम्स फ्रेजर का कथन है कि धर्म से मेरा मतलब सर्वोच्च शक्ति के साथ समझौता है, जिसमें विश्वास इस आधार पर किया जाता है कि वह मानव जीवन और प्रकृति को नियंत्रित करता है साथ ही उनका पक्ष प्रशस्त करता है।

धर्म की परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि धर्म मात्र मूल्यों का संरक्षक ही नहीं है बल्कि

वह नित नूतन मूल्यों की खोज भी करता रहता है। प्राचीन मूल्यों का संरक्षण और नवीन मूल्यों का सृजन ही धर्म का मूल उद्देश्य है। धर्म मूल्यों के संरक्षण में विश्वास है धर्म के सामाजिक आधार के अनुसार मनुष्य चूँकि सामाजिक संबन्धों की समष्टि है और सामाजिक सम्बन्ध नैतिक मूल्यों का ताना–बाना होते है। नैतिक मूल्यों का एकमात्र स्त्रोत धर्म है अतः धर्म समाज का ही अंग है। क्योंकि इसके अभाव में समज अनियंत्रित हो अव्यवस्था, अनाचार और हिंसा का शिकार हो जाता है। धर्म ही वह माध्यम है जा हमारे जीवन को स्थायित्व प्रदान करके क्षुद्रताओं से लड़ना सिखाकर संस्कृति को स्रजनशील बनाता है। स्पष्ट है कि धर्म एक सामाजिक प्रक्रिया है इसीलिये धर्म का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जा रहा है।

1.3.1 धर्म की अवधारणा

धर्म क्या है। धर्म की उत्पत्ति कैसे हुई? धर्म का अध्ययन करते समय इस प्रकार के प्रश्न उठना स्वाभाविक है। समाजशास्त्री पिट्रिम ए–सोरोकिन ने स्पष्ट कहा है कि ''धर्म का उद्गम स्त्रोत समाज है'' धार्मिक विचार समाज की विशेषताओं के प्रतीक है। धर्म जीवन का सत्य है। धर्म विवेकपरक होने के कारण सतत् गतिशील एवं विकसित होता है। धर्म, सत्य की अनुभूति है। सभी धर्म अपने–अपने ढंग से सत्य को खोजने का प्रयास करते है। सी0 टी0 डब्ल्यू0 पैट्रिक ने अपनी पुस्तक ''इन्ट्रोडक्शन ऑफ फिलासफी'' में अपना मत रखते हुए बताया है कि धर्म, चर्च, प्रार्थना, पूजापाठ, भाव–भक्ति, भजन, धर्म ग्रन्थ और सम्प्रदाय आदि नहीं है। बौद्ध विचारक थित्तिल के अनुसार, सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड धर्म का साक्षात् रूप और अभिव्यक्ति है।

हेंगेल के अनुसार, धर्मपूर्ण मस्तिष्क के रूप में अपूर्ण मस्तिष्क का नाम है अर्थात् अपूर्ण बुद्धि द्वारा अपने स्वरूप का पूर्ण बुद्धि के रूप में ज्ञान ही धर्म है।

1.3.2 धर्म की परिभाषा

मैथ्यू आर्नाल्ड के अनुसार, ''धर्म भावना से युक्त नैतिकता है।''

जेम्स फ्रेजर के अनुसार '' धर्म, सर्वोच्च शक्ति के साथ समझौता है, जिसमें विश्वास इस आधार पर किया जाता है कि वह मानव जीवन और प्रकृति को नियंत्रित करके उनका पथ प्रशस्त करता है।

इमाइल दुर्खीम के अनुसार ''धर्म पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों और आचरणों की वह समग्र व्यवस्था है, जो इस पर विश्वास करने वालों को एक नैतिक समुदाय में संयुक्त करतीं है।''

ब्लैकस्टोन के अनुसार '' धार्मिक विश्वार वह है, जो किसी निष्ठा के विषय के प्रति सम्पूर्ण आत्मबंधन के आधार पर जीवन की समस्याओं की ओर सर्वव्यापक रीति से व्यक्ति को अभिमुख करे।

धर्म की विभिन्न परिभाषाओं के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि किसी निश्चित परिभाषा की परिधि में धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करना असंभव नहीं है तो कठिन

अवश्य है। धर्म की परिभाषा से हम कुछ निष्कर्ष अवश्य निकाल सकते हैं जो इसके अवधारणात्मक पक्ष को स्पष्ट करते हैं :–

1. धर्म, मनुष्य की किसी अदृष्य सत्ता के प्रति विश्वास, प्रेम और क्रिया प्रकट करता है।
2. मनुष्य की बुद्धि, भावना और क्रिया का समावेश धर्म है इसी लिये इसकी मदद से मनुष्य सम्पूर्णत्व की ओर उन्मुख होता है।
3. धर्म एक अनुभूति है जो व्यक्ति को एक सहारा, उत्साह, निर्भरता, आशा का बोध करा शक्ति देता है।
4. धर्म से मानवोचित्त गुणों–त्याग, सेवा, उपकार, क्षमा, सौहाद्र, दया, सहनशीलता, आत्मबलिदान, आत्मसमर्पण आदि का विकास होता है।
5. धर्म पवित्र आदर्श है।

1.3.3 धर्म की विशेषताये

धर्म की परिभाषा और अवधारणात्मक पक्ष धर्म की विवेचना करते है। इससे हमें धर्म के विषय में सार तत्व ज्ञान होते है इन सार तत्वों से मुख्यतः समाजशास्त्री संदर्भ में धर्म की विशेषताऐं स्पष्ट होती है।

धर्म का संबन्ध पवित्र और अलौकिक शक्ति से हैः– विश्व में प्रचलित सभी धर्मो से स्पष्ट होता है कि धर्म का केन्द्र पवित्र और अलौकिक शक्ति है। समाजशास्त्री टायलर और स्पेंसर का विश्वास था कि धार्मिक विश्वास में आत्मा का विचार एक प्रमुख लक्षण है। वहीं फ्रेजर के अनुसार प्रारंभ से ही मनुष्य में ऊँची शक्तियों में विश्वास और उनकी आराधना करने या उन्हें संतुष्ट करने के प्रयत्न सम्मिलित है। दुर्खीम ने भी धर्म को परिभाषित करते हुऐ तर्क रखा था कि सभी समाजों में पवित्र (sacred) और अपवित्र (prefane) में भेद किया जाता है और पवित्र वस्तुओं से संबन्धित विश्वासों और क्रियाओं की एक संयक्त व्यवस्था धर्म है। मानवशास्त्री तायलर (1871) के अनुसार धर्म दैविक सत्ता में विश्वास है। सृष्टि के प्रारंभिक चरणों में देखा गया है व्यक्ति ने समाज में किसी भी प्रकार की घटना को अलौकिक शक्ति का परिणाम मानकर इन अलौकिक शक्तियों को उनकी शक्ति और प्रकार्य को आधार पर श्रेणी बद्ध किया है। ब्रम्हा, विष्णु और शिव प्रमुख देवता है जिनका प्रकार्य सृष्टि का निर्माण, सृष्टि का विकास और सृष्टि पर आने वाले संकटों का विनाश करना है। हमारे यहाँ हवा, पानी, आग, पर्वत, भूमि आदि को प्राकृतिक शक्ति के रूप में अलौकिक शक्ति (दैविय शक्ति) माना है।

विद्वानों के मतानुसार धर्म का संबन्ध ''पवित्रता'' से है। इसीलिये दैवीय शक्तियों को पवित्र मानते हुये इन्हें अलग रखा जाता है। अनुष्ठानिक कार्यों में पवित्र अर्थात दैवीय शक्ति और सांसारिक इकाइयों में संबंध स्थापित किया जाता है। इसीलिये व्यक्ति पवित्र कार्यों में भाग लेते समय स्वयं को शुद्धिकरण की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है।

धर्म से सामुहिकता होती है:– धर्म में सामूहिकता होती है अर्थात धर्म एक सामूहिक तत्व है धर्म के माध्यम से व्यक्ति समूह में एकत्र होते है। सामान्यतः देखा गया है कि सभी धर्मावलंबी सामूहिक रूप में प्रार्थना करते है। चर्च में प्रत्येक रविवार को सामूहिक प्रार्थना, मस्जिद में शुक्रवार और ईद के अवसर पर सामूहिक रूप से नमाज पढ़ना, मंदिरों में प्रातः और संध्या आरती सामूहिक ही की जाती है। प्रख्यात् समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम ने ईश्वर और समाज को समान माना है। दुर्खीम कहते है कि ईश्वर की आराधना की समाज की पूजा है क्योंकि ईश्वर मानव के सामाजिक सृजन का परिणाम है। धर्म को मानने वाला सभी के साथ समता का व्यवहार करता है। सर्वत्र एक ही ईश्वर का दर्शन करता है, सबको ईश्वरमय जानता है और किसी से भी बैर भाव न रखने की बात करता है। धर्म का स्वरूप सामाजिक है, वैयक्तिक नहीं। धर्म ने ही सामाजिक एकता को जन्म दिया और उसे समृद्ध किया है।

धर्म विश्वासों की व्यवस्था है:– धर्म एक विश्वास है, विश्वास के कारण ही मनुष्य अलौकिक शक्ति के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। अलौकिक शक्ति के प्रति विश्वास के कारण ही धर्म का अस्तित्व पीढ़ी दर पीढ़ी चला आ रहा है, विश्वास के कारण ही धार्मिक पारंपरिक रीति रिवाजों का कोई विरोध नहीं करता है। धर्म के प्रति विश्वास के कारण ही सभी धर्मों में विविध प्रकार के अनुष्ठान सामूहिक और उत्साहपूर्वक सम्पन्न किये जाते है। रमजान का पर्व सामूहिक रूप से बड़े धूम धाम और उत्साह पूर्वक सम्पन्न किया जाता है, करवा–चौथ, छठ–पूजन, दशहरा, नवरात्र आदि अनुष्ठान आज भी पारंपरिक रूप से उत्साहपूर्वक मनाये जाते है। धर्म के प्रति व्यक्ति के अटूट विश्वास के कारण एक लंबे समय से समाज के हर वर्ग द्वारा बिना किसी विरोध के या शक के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों का पालन किया जाता है।

धर्म एक नैतिक आचार संहिता है:– धार्मिक विश्वास और अनुष्ठानों के साथ व्यक्ति का संपर्क एक लंबे समय से है। हम अलौकिक शक्ति से संपर्क स्थापित करना चाहते है और इसके लिये कुछ आचार संहितायें बनाई गई है। ये आचार संहिता धर्म का ही भाग है जो मनुष्य को ईश्वर से जोड़ती है। ईसाई धर्म के दस आदेश (Ten Commandments), गीता के उपदेश, कुरान की आयतें नैतिक आचार संहिता ही है। समाज में परिवार, शिक्षा, कानून कई प्रकार की संहितायें है और समाज अपेक्षा करता है कि लोग उसका पालन करें। इसीलिये धर्म में आस्था रखने वालों से यह माना जाता है कि वे धार्मिक नैतिक संहिताओं का पालन करेंगे।

1.4 धर्म के समाजशास्त्र का विकास

धर्म के प्रति समाज प्रारंभ से ही सजग रहा है। हमारे सभी धार्मिक ग्रंथों की प्राचीनता से स्पष्ट होता है कि धर्म एक प्राचीन मुद्दा है। वेद, उपनिषद, पुराण, दार्शनिक अरस्तु, प्लेटो के ग्रंथों में धर्म की चर्चा से स्पष्ट होता है कि धर्म पर चर्चा आज की बात नहीं है बल्कि सृष्टि की शुरुआत से ही है। धर्म का समजशास्त्र एक नया अध्ययन है क्योंकि समाजशास्त्र की शुरुआत ही सन् 1838 में फ्रांस से हुई है लेकिन धर्म का अध्ययन, धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र में प्रारंभ से ही किया जा रहा है।

मानव संस्कृति के उत्थान– पतन में धर्म की प्रमुख भूमिका रही है। एटकिन्सन ली के अनुसार, धर्म के निकास की चर अवस्थायें है –

1. प्रारंभिक धर्म
2. प्रकृतिक धर्म
3. मानवीय धर्म
4. आध्यात्मिक धर्म

गैलवे ने धर्म के विकास क्रम में केवल तीन अवस्थाओं आदिम धर्म, राष्ट्रीय धर्म और विश्वव्यापी धर्म को स्वीकार किया है। धर्म के विकास की अलग अलग प्रकार से विद्वानों ने विवेचना की है, लेकिन जब हम धर्म के समजशास्त्र के विकास की बात करते है तो इसे दो भागों में स्पष्ट किया जा सकता है –

1. पूर्व औद्योगिक समाज में धर्म का स्वरूप।
2. औद्योगिक समाज में धर्म का स्वरूप।

1. **पूर्व औद्योगिक समाज में धर्म**– धर्म का समाजशास्त्र विकस के आरंम्भिक दौर में धर्म की उत्पत्ति और प्रसार को विवेचित करता है। इसमें धर्म की दो व्याख्यायें व्यक्तिपरक और समाजपरक थी । व्यक्तिपरक व्याख्या और समाजपरक व्याख्या में विश्व के सभी धर्मों का विश्लेषण जनजातीय समाज में प्रचलित धार्मिक मान्यताओं के विषय में मानवशास्त्री और समाजशास्त्रियों की एकत्र सामग्री थी। काम्टे, टायलर और स्वेन्सर ने अपने सिद्धान्तों के आधार पर धर्म की व्याख्या की है, अगस्त काम्टे ने समाजशास्त्र की मूलभूत अवधारणाओं में से एक तीन अवस्थाओं का नियम (Law of three stages) के माध्यम से स्पष्ट किया कि मानव विचार धार्मिक अवस्था से आध्यात्मिक अवस्था होते हुये अनुभववादी अवस्था (वैज्ञानिक) से गुजरे है। धर्मशास्त्रीय अवस्था में काम्टे ने जडात्मवाद से एकेश्वरवाद तक के विकास को ढूँढा गया है। काम्टे ने धर्म की व्याख्या प्रारंभिक मानवों के प्रेक्षणों के संदर्भ में करते हुये धर्म की सार्वभौमिक आवश्यक्ता को स्वीकार किया है।

   टायलर और स्पेन्सर ने धर्म की उत्पत्ति की व्याख्या की है। इनका विश्वास था कि धार्मिक विश्वासों में आत्मा का विचार एक प्रमुख लक्षण है और यह बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार से एक ऐसे विचार का उदय मानव के मस्तिष्क में हुआ होगा। मनुष्यों को आत्मा का विचार स्वप्नो और मुत्यु का अर्थ निर्वचन करने से मिला होगा। स्पेन्सर ने वस्तुओं के उस मौलिक सिद्धांत को बनाया है जिसमें स्वपनों की मानी हुई वास्तविक्ता से प्रेतों की मानी हुई वास्तविकता की उत्पत्ति हुई और जहाँ से सभी प्रकार के माने हुये आदि भौतिक (दैवी) प्राणियों का विकास हुआ है।

   फ्रेजर ने जादू और धर्म के बीच भेद दिखाते हुए स्पष्ट किया कि जादू में प्राकृतिक

प्रक्रियाओं के ऊपर मनुष्य की शक्ति का दबदबा सन्निहित है जबकि धर्म में मनुष्य से ऊँची शक्तियों में विश्वास और उनकी आराधना करने या तुष्ट करने का प्रयत्न सम्मिलित है ।

धर्म के समाजशास्त्र के विकास में इमाइल दुर्खीम की चर्चा करना भी जरूरी है। दुर्खीम ने यह तर्क दिया कि सभी समाजों में पवित्र (Sacred) और अपवित्र (Prefane) में भेद किया जाता है। पवित्र वस्तुओं से संबन्धित विश्वासों और क्रियाओं की एक संग्रह व्यवस्था ही धर्म कहलाती है एक नैतिक समुदाय में संगठित विश्वास और क्रियाओं को सभी लोग चर्च के रूप में अपनाते है। पवित्र के प्रति विश्वास और इससे संबंद्ध अनुष्ठान वास्तव में एक प्रकार की भावात्मक अभिव्यक्ति है धर्म मनुष्य को शक्तिहीन होने की भावना से मुक्त कराता है। दुर्खीम के विचारों को बाद में मानवशास्त्री मैलिनोस्की और रेडक्लिफ ब्राउन ने अपने क्षेत्र अध्ययनों से स्पष्ट करते हुये कहा कि आदिम समाजों में धर्म सामाजिक एकता को बनाने के साथ ही साथ व्यक्तिगत आचरण पर नियंत्रण करने का कार्य करता है।

2. **औद्योगिक समाज में धर्म**– औद्योगिक समाज में धर्म का अध्ययन करने वाले दो विद्वानों कार्ल मार्क्स और वेबर प्रमुख है। मार्क्स और वेबर का मानना था कि जैसे जैसे समाज का विकास होगा धर्म का प्रभाव भी कम होता जायेगा और आने वाले भविष्य में विज्ञान धर्म को समाप्त भी कर सकता है। मार्क्स ने स्पष्ट किया है कि धर्म समाज की वर्ग व्यवस्था का परिणाम है वर्ग संघर्ष के कारण ही समाज में एक वर्ग जिसका शोषण होता है वह अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति धर्म के रूप में करता है।

1.5 धर्म, जादू–टोना और विज्ञान

धर्म की जब भी बात या चर्चा की जाती है तो इसके साथ जादू टोना और विज्ञान की चर्चा भी होती है। जनसाधारण द्वारा जादू–टोना को धर्म का अंग और विज्ञान को धर्म का विरोधी माना जाता है। क्या ऐसा है? यहाँ पर हम इसे ही स्पष्ट करेंगें।

धर्म और जादू टोनाः– धर्म और जादू टोने की जब हम बात करते है तो इससे एक बात स्पष्ट होती है कि धर्म और जादू टोने में समानता है। धर्म और जादू–टोने दोनों का संबन्ध अदृष्य शक्तियों से है। धर्म और जादू दोनों का ही अस्तित्व विश्वास रखने वालों की आस्था पर आधारित है। सृष्टि के प्रारंभिक दिनों में धर्म और जादू की शुरुआत मनुष्य के जीवन में होने वाले डर, भय के कारण हुई थी । फ्रेजर, मैलिनोस्की ने धर्म और जादू की विस्तृत विवेचना करते हुये बताया कि इन दोनों में काफी कुछ समानता है क्योंकि इन दोनों में किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये अलौकिक शक्ति की कुछ विधियों के द्वारा खुश करने के साथ ही साथ वश में करनें का प्रयास किया जाता है।

फ्रेजर केमतानुसार सर्वप्रथम जादू टोनों का प्रचलन रहा होगा और इसका प्रयोग आदिमानव, प्रकृति पर नियंत्रण पाने और अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये करता होगा लेकिन

जब कई बार उसका जादू असफल हो गया होगा तो उसने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये एक ऐसी शक्ति की कल्पना की होगी जो उसके जादू का विकल्प हो। और मनुष्य उसकी पूजा, प्रार्थना, आराधना करने लगा ऐसे धर्म की शुरूआत हुई। मैलिनोवस्की के अनुसार जादू एक विशुद्ध व्यवहारिक क्रियाओं का एक योग है। जिसे कि उद्देश्यों की पूर्ति के साधन के रूप में किया जाता है।

धर्म और जादू संकट से छुटकारा पाने की दो विधियाँ है। इनका संबन्ध अलौकिक और अतिमानवीय शक्ति से है। इन दोनों का प्रयोग उस समय किया जाता है जब मनुष्य की दक्षता एवं क्षमता जबाव दे देती है। धर्म और जादू की अलग–अलग तरह से विवेचना की गई है। वास्तव में धर्म का संबन्ध मनुष्य की आधारभूत समस्याओं और मानव अस्तित्व जैसे मृत्यु, विफलता आदि से है जबकि जादू टोने का संबन्ध उसकी छोटी मोटी समस्याओं जैसे मौसम परिवर्तन, अकाल, रोगों की रोकथाम आदि से है। धर्म में हम ईश्वर की पूजा प्रार्थना करते हैं जबकि जादू टोनें में एक जादूगर अलौकिक शक्ति को अपने वश में करने की कोशिश करता है। दुर्खीम ने धर्म को पवित्र और जादू को अपवित्र माना है। धर्म एक सामाजिक तथ्य है, जबकि जादू एक व्यक्तिगत तथ्य है। इसीलिये वर्मोन ने स्पष्ट किया है कि जादू एक प्रकार से ग्राहक विक्रेता की स्थिति में किया जाता है जबकि धर्म में मालिक और चाकर की भावना होती है अर्थात् भक्त भगवान की शरण में होता है। धर्म में मनुष्य परमात्मा के समक्ष स्वयं को तुच्छ और शक्तिहीन पाता है और अलौकिक शक्ति को सर्वशक्तिमान मानता है। धर्म एक सामूहिक गतिविधि है इसमें व्यक्ति का निश्चित लक्ष्य रहता है उसके अपने विश्वासों का पुंज होता है। एक धर्म के मानने वालों का एक धार्मिक समुदाय होता है जबकि जादू टोना में किसी प्रकार की सामुदायिक भावना नहीं होती है धर्म के समान जादू की कोई जीवन पद्धति नहीं है धार्मिक क्रिया कलाप कराने वाले पुजारी को सम्मान की नजर से देखा जाता है, जबकि जादूगर को भय और शंका की नजर से देखा जाता है।

धर्म और विज्ञान– विज्ञान एक पद्धति है जो ज्ञान की खेज करने के साथ ही साथ हमारी समस्याओं का समाधान भी करती है तथ्यों पर आधरित पद्धति विज्ञान कहलाती है। वही धर्म एक विशिष्ट विधि है जो परंपरात्मक ज्ञान से जुदा होती है जिसमें अलौकिक शक्ति के प्रति विश्वास और आस्था प्रकट की जाती है। धर्म और विज्ञान सामुहिक है जो मनुष्य को तथ्य या वास्तविकता से जोड़ने की पद्धति है। इससे हम सत्य के करीब पहुंचते है और अज्ञात को ज्ञात करने का प्रयास करते है, विज्ञान सिर्फ दिखावे पर जोर नही देता । इसमें निश्चित वैज्ञानिकि पद्धतियों का प्रयोग करके तथ्य विशेष का अर्थ जाना जाता है ।

विज्ञान में निष्पक्षता और तटस्थता पर आस्था की जाती है। इसमें पूर्वाग्रहों को मान्यता नहीं दी जाती। ये सूक्ष्मता और परिमाणन को महत्वपूर्ण मानता है। लेकिन धर्म में ऐसा नहीं है। धर्म पूर्वाग्रहों और विश्वासों पर आधारित है। वैज्ञानिक ज्ञान और पद्धतियाँ जहाँ सार्वभौमिक होती है वही धर्म सभी समाजों मे भिन्न–भिन्न होता है। विज्ञान अज्ञात वस्तु को प्रेक्षणीय वास्तविकता में प्रस्तुत करता है लेकिन धर्म में ईश्वरीय अभिव्यक्ति की प्रेरणीय साक्षात्कार नहीं करा सकते है।

1.6 निष्कर्ष

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि समाजशास्त्र एक विज्ञान है और धर्म एक दर्शन है धर्म एक विश्वास है, अनुशासन है। धर्म, सामूहिकता का द्योतक है। समाजशास्त्र समाज में धर्म के स्वरूप प्रकार, विशेषताओं की व्याख्या करने के साथ ही स्पष्ट करता है, धर्म समाज की अनिवार्यता है।

1.7 प्रश्नावली

1. निम्नांकित कथनों के सामने सही (√) या गलत (X) का निशान लगाइये ।

   a- धर्म जीवन का सत्य है।

   b- टायलर के अनुसार, धर्म आध्यात्मिक सत्ता में विश्वास है।

   c- कार्लमर्क्स ने विश्व के विभिन्न धर्मो का अध्ययन किया था ।

   d- धर्म और जादू टोना समाज से पृथक् है।

2. उपर्युक्त मेल/जोड़ी बनाइये ।

   a- पिटरिम सोरोकिन 1– धर्म, मूल्यों की संरक्षा में विश्वारस है।

   b- वर्मोन 2– धर्म, अफीम का साक्षात् ज्ञान है।

   c- हॉफडिग 3– धर्म, का उद्गम स्त्रोत समाज है।

   d- मैक्स मूलर 4– जादू, ग्राहक–विक्रेता की स्थिति में किया जाता है।

   e- जेम्स फ्रेजर 5– धर्म, सर्वोच्च शक्ति के साथ समझौता है।

3 .धर्म की समाजशास्त्रीय व्याख्या तीन पंक्तियों में लिखे।

4. धर्म क्या है, स्पष्ट करें ।

5. धर्म की विशेषतायें लिखिये ।

6. धर्म और जादू टोनें के बीच दो अंतर बताइये।

बोध प्रश्न उत्तर

1 - (a) – (√), (b) - (√), (c) - (X), (d) - (√)

2 - (a) – (3), (b) - (4), (c) - (1), (d) - (2), (e) – (5)

इकाई–2
धर्म का विकासवादी सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 धर्म के विकास की अवस्था

2.4 धर्म के विकास के स्तर

2.5 धर्म का विकास स्वरूप

2.6 निष्कर्ष

2.7 प्रश्नावली

2.1 उद्देश्य

इस इकाई मे आप जानेगे–

1 .धर्म के विकास की अवस्था को आप समझ सकेगे ।

2 .धर्म के विकास के स्तर पर आपने विचार का विकास करेगे।

3. धर्म का विकास स्वरूप को आप पहचानेगे ।

2.2 प्रस्तावना

मानव समाज का एक लम्बा इतिहास है। धर्म किसी न किसी रूप से उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव समाज और मानव। मानव हजारों वर्षों से धर्म की प्रकृति के विषय में विचार करने में लगा हुआ है। धर्म की समुचित परिभाषा न होने के कारण यह बताना कठिन है कि धर्म की उत्पत्ति किस समय व किस युग में हुई। ऐसा माना जाता है कि जब से मानव सभ्यता का विकास हुआ है तभी से धर्म, सैद्धांतिक, आलौकिक और प्रकृति में अभौतिक है। यह प्रतीकों और आदर्श विचारों से संबंधित अवधारणा है। समाजशास्त्री दुखीम ने धर्म को पवित्र अपवित्र से विश्लेषित किया है। धर्म का प्रारंभ और विकास मानव सभ्यता के साथ ही प्रारंभ हुआ है। धर्म के प्रारंभिक स्वरूप से वर्तमान स्वरूप तक में काफी बदलाव आये हैं। यहाँ पर हम धर्म के विकासवादी स्वरूप को समझने का प्रयास करेंगे।

धर्म के विकासवादी सिद्धांत ईकाई के अंतर्गत हमें धर्म के विकासवादी स्वरूप को जानना होगा। इसके अंतर्गत हम निम्न मूल बातों को समझेंगे।

- धर्म के विकास की अवस्थायें ।

- विकास की अवस्थाओं की विवेचना।
- धर्म और विकास ।

धर्म समूह वृत्ति की उपज है। धर्म, उपयोगिता की वस्तु न होकर मूल्य का विषय है। धर्म की आवश्यकता और उपयोगिता के मुल में सामाजिक कारण भी है मनुष्य सामाजिक सम्बन्धों की समष्टि है। सामाजिक सम्बन्ध नैतिक मूल्यों का जाना – बाना है और नैतिक मूल्यों का एक मात्र स्त्रोत धर्म है। इसीलिये कही गया है कि धर्म के अभाव में समाज अनियंत्रित जंगल में परिणित हो जाता है। जहां अव्यवस्था, अनाचार और ींसा का साम्राज्य होता है। मानव संर्स्कति क उत्थान पतन में धर्म की प्रमुख भूमिका रही है। धर्म के विभिन्न सिद्धांत है जिसमें से एक सिद्धांत विकासवादी सिद्धांत है।

2.3 धर्म के विकास की अवस्था

धर्म मनुष्य की अपार शक्ति का स्त्रोत है। धर्म से मनुष्य में आध्यात्मिक शक्ति आती है। धर्म के मार्ग पर चलने से हमें शांति की प्रप्ति होती है, धर्म अनंत शक्तियों का स्त्रोत है, धर्म प्रयोगों व तथ्यों पर नहीं अपितु विश्वासों और आस्थाओं पर आधारित है। विश्वास और आस्थाओं पर आधारित धर्म एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है। धर्म मात्र भावना ही नहीं है क्रिया भी है, व्यवहार भी है, धर्म मात्र भाव का परिणाम नहीं है, बल्कि बुद्धि, राग, और क्रिया का समन्वय है। मानव संस्कृति के उत्थान पतन में धर्म की प्रमुख भूमिका रही है। एटकिन्स ली (Atkinson Lee) ने धर्म के विकास की चार अवस्थायें बताई है।

1. प्रारंभिक धर्म,
2. प्राकृतिक धर्म
3. मानवीय धर्म
4. आध्यात्मिक धर्म

प्रो0 गैलवे (Galloway) ने विकास क्रम में तीन अवस्थाओं को माना है।

1. जातीय धर्म या आदिम धर्म ।
2. राष्ट्रीय धर्म।
3. विश्वव्यापी धर्म।

धर्म के विकासवादी सिद्धांत की विवेचना करते हुये विभिन्न समाजशास्त्रियों ने स्पष्ट किया है कि धर्म अपने अलग–अलग स्वरूपों में विकसित हुआ है। एटकिन्सन ली ने बताया हकि धर्म चार अवस्थाओं में विकसित हुआ है। धर्म की शुरूआत को प्रारंभिक धर्म कहा जाता है। धर्म की शुरूआत विश्वास से हुई है। जड़ात्मवाद से एकेश्वरवाद तक विकास में धार्मिक विश्वास ही प्रमुख है।

प्राकृतिक धर्म, विकास का दूसरा स्तर है इसमें प्रकृति के प्रति मानव के विश्वास को

प्रमुख माना गया है। प्रकृति जीवन का माध्यम है। प्रकृति की पूजा धर्म का ही एक स्वरूप है।

मानवीय धर्म विकास का तृतीय स्तर है, जिसमें मानव और मानवीयता को प्रमुख माना गया है। धर्म हमें मानव सेवा का पाठ पढ़ाता है एवं धर्म ने ही समाज को यह सिखया है कि मानव सेवा ही सच्ची सेवा है। धर्म मानव मूल्यों का संरक्षक है, धर्म श्रद्धा और समर्पण पर जोर देता हैं।

आध्यात्मिक धर्म विकास का चतुर्थ स्तर है। इसमें आध्यात्म को प्रमुख माना गया है आध्यात्म के रूप में समाज में व्यक्ति अपने साथ एक सर्वोच्च सत्ता के साथ समाहित कर लेता है। यह सामूहिकता को महत्व प्रदान करता है।

धर्म और विकास, एक महत्वपूर्ण अवधारणा है धर्म का विकासवादी सिद्धांत मूलतः 20वीं सदी के द्वितीय भाग से विकसित हुआ है। विकासवादियों के अनुसार समाज में धार्मिक विश्वासों की अवधारणा के अंतर्गत ही ईश्वर, प्रार्थना, विश्वास, धार्मिक पहचान, धार्मिक सोच, धार्मिक न्याय विकसित हुये हैं।

धर्म के विकासवादी विचारक जेम्स फावलर ने विश्वास की अवधारणा का प्रारूप प्रस्तुत किया । फावलर के अनुसार समाज में धर्म ही वह तथ्य है जिसके प्रति विश्वास मानव जाति का गतिशील अनुभव है। व्यक्ति को पवित्र और अपवित्र में विश्वास करने के लिये धर्म ही प्रेरित करता है। जेम्स फावलर ने विश्वास के विभिन्न चरण बताये हैं।

विश्वास का प्रथम चरण आदिम स्तर है, जिसमें व्यक्ति प्रत्येक घटना को किसी सर्वशक्तिमान अदृष्य शक्ति का प्रभाव मानता था।

विश्वास के दूसरे चरण में व्यक्ति आदिम स्तर से ऊपर आता है और प्रकृति की प्रत्येक घटना के लिये किसी को जिम्मेदार बताता है।

विश्वास के तृतिय चरण में सभ्यता का विकसित स्वरूप आता है जिसमें व्यक्ति नें पवित्र अपवित्र की धारणा विकसित कर धार्मिक विश्वासों को सुदृढ़ किया ।

फायलर ने टायलर के विचारों की ही आगे बढ़ाया है। टायलर के अनुसार धर्म की उत्पत्ति आत्मा में विश्वास के कारण हुई है। स्वेंसर भी यही बात मानते थे साथ ही उनका विश्वास था कि समस्त धार्मिक संस्कार, कृत आदि का उद्भव पूर्वज पूजा से हुआ है और इन सबका आधार डर (Fear) था। इसी आधार पर स्पेन्सर ने सावयवीं व्यवस्था विवेचित की थी। स्पेन्सर ने स्पष्ट किया था कि ''सभी धर्मों की उत्पत्ति मरं हुये लोगों के डर के कारण और समस्त समाजों की उत्पत्ति जिंदा लोगों के डर के कारण हुई है। टायलर कहते हैं कि धर्म की उत्पत्ति आत्मा में विश्वास के आधार पर हुई थी और चूंकि आत्मायें अनेक हैं इसीलिये धर्म का सर्वप्रथम और सबसे सरल स्परूप बहुदेवत्ववाद (Polytheism) था। जोकि धीरे–धीरे उद्विकासीय प्रक्रिया में से गुजरता हुआ अद्वैतवाद (Monotheism) की स्थिति में आ पहुँचा है। यही अद्वैतवाद या एक ईश्वर पर विश्वास धर्म की आधुनिक अवस्था है। टायलर के धर्म के विकास के विचार समाजशास्त्र के जनक अगस्त काम्टे से मिलते है।

2.4 धर्म के विकास के स्तर

अगस्त काम्टे ने धर्म के विकास के तीन स्तर स्पष्ट किये है और वे हैं :–

1. जीवितसत्तावाद (Fetishism) ।
2. बहुदेवत्ववाद (Polytheism) ।
3. अद्वैतवाद (Monotheism) ।

जीवित सत्तावाद में मानव अलौकिक शक्ति के यथार्थ स्वरूप के संबन्ध में बिल्कुल ही अज्ञान था और वह प्रत्येक चीज में एक जीवित सत्ता को अनुभव करता था। इसी के आधार पर इस स्तर पर अनेक जादू टोनों पर विश्वार किया जाता था। द्वितीय स्तर में मानव का मस्तिष्क सुसंगठित हुआ और इस कारण वह जादू टोनों से परेशान हो गया और उन्हें एक सम्मिलित रूप देने की भावना उसमें जागृत हुई जिसके फलस्वरूप जीवन के विभिन्न पहलुओं से संबन्धित एक–एक देवी–देवता का जन्म होता है। इसे काम्टे ने बहुदेवत्ववाद का स्तर बताया है। लेकिन इन अनेक देवी–देवताओं के कारण भी मानसिक उलक्षनें बनी रहीं । इस कारण मानव अपनें समस्त श्रद्धा–विश्वास को अनेक देवी–देवताओं में न बाँटकर किसी एक ईश्वर पर अपनी समस्त श्रद्धा–विश्वास आदि को निछावर करने कि लिये उन्मुक्त हुआ, जिससे तृतीय स्तर ''अद्वैतवाद'' का जन्म हुआ।

कुछ विकासवादी चिंतकों ने धर्म के विकास को इस प्रकार स्पष्ट किया है :–

क्र0	धार्मिक मान्यता	बाईबिल की मान्यता
1.	व्यक्ति की मान्यता है कि भगवान मानवीय आवरण में नहीं है।	भगवान का अस्तित्व है और वह मानवीय आवरण में घूमता है
2.	भगवान, मानव संबन्धों में दखलंदाजी नहीं करता है।	भगवान, मानव संबन्धों में दखलंदाजी करता है।
3.	बाईबिल मानव विचारों का उत्पाद है।	बाईबिल भगवान से प्रेरित पुस्तक है।
4.	मानव व्यवहार, सामाजिक मान्यताओं से संचालित है।	मानव व्यवहार दैवीय शक्ति से संचालित है।

धर्म के विकास का सिद्धांत बताता है कि समाज में सांस्कृतिक उत्थान के साथ–साथ धर्म का भी तेजी से प्रचार–प्रसार होने लगा। आध्यात्मिक मूल्यों को ईश्वर का स्थान दिया जाने लगा समाज में मानवीय मूल्यों और नैतिक गुणें को सर्वोपरी स्थान मिलने लगा । ईश्वर के स्थान पर महामानव पूज्य बन गया । जैन धर्म, बौद्ध धर्म, अद्वैतवाद इसी श्रेणी के धर्म है। धर्म के विध्वंसात्मक स्वरूप के कारण ही मार्क्स ने साम्यवाद को धर्म की श्रेणी में रखते हुये

ईश्वर को मृतक घोशित कर दिया ।

2.5 धर्म का विकास स्वरूप

गैर्लवे ने धर्म के विकास के स्वरूप को तीन स्वरूपों में स्पष्ट किया हैः—

1. **आदिम धर्मः**— आदिम धर्म, प्रारंभिक चरण है इसे असभ्यकालीन धर्म भी कहा जाता है। आज भी अविकसित समाजों (जनजातियों) के बीच यह प्रचलित है। इसमें व्यक्तिव की अपेक्षा जाति को अधिक महत्व दिया जाता था। जाति या टोली द्वारा नियत नियम के विरूद्ध आचरण करने वालों को इसमें दण्ड का विधान है। इसमें अंधविश्वास की प्रधानता है यह जादू टोने के साथ घुला मिला था औार चमत्कार एवं अहंकार केन्द्र बन गया था। ''मानव'' के प्रभाव से फलसंवृद्धि, रोगमुक्ति, प्राणवाद में रोग आदि का कारण दुष्टात्मा, टोटम पशु के स्पष्ट होने से अनिष्ट का भय और तावीज पहन कर लडने से युद्ध में विजय आदि अंधविश्वास प्रचलित हैं। घटना का आधार वैज्ञानिक न होकर धार्मिक था । इसमें व्यक्तित्वपूर्ण नैतिक गुण सम्पन्न् ईश्वर का सर्वथा अभाव था ।

2. **राष्ट्रीय धर्मः**— समाज में विभिन्न समुदायों के परस्पर सहयोग और संगठन से राष्ट्रीय चेतना उदित हुई। धर्म के विकास की यह मध्य की कड़ी है। इस भावना से ही ऐकेश्वरवाद विकसित हुआ। देवताओं की प्राकृतिक शक्तियों का अधिष्ठाता माना गया और प्राकृतिक शक्तियों में मानवीय गुणों का आरोपण हुआ। पौराणिकता का जन्म हुआ और देवताओं का नैतिकीकरण हुआ। अनेकेश्वरवाद से ऐकेश्वरवाद की प्रगति हुई। समस्त देवताओं के मूल में एक ही ईश्वर को स्वीकारा गया और समाज में व्याप्त मतभेद समाप्त कर दिये गये। ईश्वर की पूजा प्रारंभ हुई। लोगों में श्रद्धा विनम्रता, प्रेम और कृतज्ञता के भाव जगे। अहंकार और चमत्कार का विनाश हुआ। नैतिक गुणों की अभिवृद्धि से ईश्वर की प्रार्थना प्रारंभ हुई। समाज में नैतिकता और आध्यात्मिकता की जड़ें मजबूत हुई और समाज में यह विश्वास हुआ कि किये गये कर्म का फल अवश्य ही भोगना होगा।

3. **विश्व धर्मः**— यह आध्यात्मिक धर्म के विकास का चरम स्तर है। विश्व धर्म, जाति या समुदाय की सीमा से स्वतंत्र है और विश्व के समस्त प्रणियों को समान दृष्टि से देखता है यह आडम्बर और पाखण्ड से मुक्त धर्म है, इसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता को महत्व दिया जाता है, और मानवीय मूल्यों का अनादर किया जाता है। यह निश्चल, निष्कपट और निष्पक्ष धर्म है। यह धर्म व्यक्ति को स्वावलंबी बनाकर उन्हें व्यक्तिगत शक्ति का सदुपयोग करके स्वयं आगे बढ़ने का उपदेश देता है।

2.6 निष्कर्ष

धर्म एक सामूहिक अवधारणा है। धर्म और मानव सभ्यता समानान्तर रूप से विकसित हुई हैं धर्म की कोई भी ऐसी परिभाशा अस्तित्व में नहीं है जिसके आधार पर धर्म की उत्पत्ति

का समय ज्ञात किया जा सके। धर्म विश्वास पर आधारित है। धर्म के विकासवादी सिद्धांत से स्पष्ट होता है कि धर्म मात्र भावना ही नहीं है, क्रिया भी है, व्यवहार भी है। एटकिन्स ली, गैलवे, अगस्त काम्ट आदि ने धर्म के विकास के विभिन्न चरणों को स्पष्ट किया है। इनके विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि समाज में सांस्कृतिक उत्थान के साथ–साथ धर्म का भी तेजी से प्रचार–प्रसार हुआ है।

2.7 प्रश्नावली

1. निम्नांकित प्रश्नों के सामने सही (√) या गलत (X) का निशान लगाइये ।
   - a- धर्म समूह वृत्ति की उपज है।
   - b- धर्म समाज की अपार शक्ति का स्त्रोत है।
   - c- टायलर के अनुसार धर्म की उत्पत्ति आत्मा में विश्वास से हुई है।
   - d- काम्ट ने धर्म के विकास के पांच स्तर बताये हैं।
2. जोड़ी बनाइयेः–
   - a- काम्ट – (1) मानव व्यवहार दैवीय शक्ति से संचालित है।
   - b- मार्क्स – (2) धर्म के तीन स्तर
   - c- बाईबिल – (3) धर्म विरोधी
   - d- प्राचीन धर्म – (4) धर्म के विकास की चार अवस्था
   - e- एटकिन्सन – (5) आदिम धर्म
3. राष्ट्रीय धर्म की विशेषता लिखिये ।
4. धर्म के विकास की अवस्था समझाईये।
5. धर्म के विकास का अर्थ स्पष्ट कीजिये ।

बोध प्रश्न उत्तर

1- (a) – (√), (b) - (X), (c) - (√), (d) - (X)

2- (a) – (2), (b) - (3), (c) - (1), (d) - (5), (e) – (4)

इकाई–3
धर्म के प्रकार्यवादी सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 धर्म और प्रकार्य

3.3.1 रैडक्लिफ ब्राउन के अनुसार

3.3.2 इमाहल दुर्खीम के अनुसार

3.3.3 किंग्सले डेविस के अनुसार

3.4 प्रकार्यवादी मान्यता

3.5 निष्कर्ष

3.6 प्रश्नावली

3.1 उद्देश्य

इस इकाई मे आप जानेगे–

1 धर्म और प्रकार्य की अवधारणा को आप समझ सकेगे।

2 धर्म और प्रकार्य पर रैडक्लिफ ब्राउन के विचारो को समझेगे ।

3 धर्म और प्रकार्य ईमाहल दुर्खीम के विचारो को समझेगे ।

4 धर्म और प्रकार्य किंग्सले डेविस के विचारो को समझेगे ।

3.2 प्रस्तावना

धर्म का प्रकार्यवादी सिद्धांत एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। प्रकार्यवादीयों ने धर्म की व्याख्या समाज में एक प्रकार्य (Functions) के रूप में की है। प्रकार्यातमक उपागम के अंतर्गत हम किसी प्रधटना की व्याख्या या विश्लेषण करते समय उस प्रघटना की संरचना और संरचना को बनाने वाली विभिन्न इकाइयों के प्रकार्यों के आधार पर करते है। धर्म का प्रकार्यवादी सिद्धांत समाजशास्त्रियों विलियम राबर्टसन स्मिथ, इमाइल दुर्खीम, ए0 आर0 रेडक्लिफ ब्राडन, बी मैलोनास्की, मैक्स बेवर, टायलर पारसंस आदि के समर्थकों नें विकसित किया था। प्रकार्यवादी सिद्धांत की प्रमुख मान्यता यह है कि धर्म सार्वभौमिक रूप से पाया जाता है क्योंकि सामाजिक व्यवस्था संपूर्ण समाज में उपस्थित रहती है। धर्म के अनुसार माना जाता है कि इसमें वैचारिक

और भावनात्मक एकता आवश्यक होती है।

धर्म के प्रकार्यवादी सिद्धांत, ईकाई के अंतर्गत हमें धर्म के प्रकार्यवादी स्वरूप को जानना होगा। प्रकार्यवादी उपागम के अंतर्गत हम व्यवस्था के विभिन्न अंगों और उनमें पाये जाने वाले परस्पर सबन्धों एवं उनके प्रकार्यों या भूमिकाओं के विश्लेषण को देखेंगे ।

प्रत्येक समाज और संस्कृति की स्थिरता व निरन्तरता उसके विभिन्न तत्वों या इकाइयों के संगठन व व्यवस्था पर निर्भर करतीं है, यह संगठन व व्यवस्था तभी संभव है जब ये विभिन्न तत्व या इकाईयाँ अपना–अपना योगदान इस संगठन या व्यवस्था को बनाये रखने में दें। समाज एक अखण्ड व्यवस्था नहीं है इसमें अनेक इकाईयाँ, भाग, अंग, तत्व होते हैं और प्रत्येक से यह आशा की जाती है कि ते समाज व्यवस्था व संगठन को बनाये रखने के लिये कुछ निश्चित कार्यों को करेंगें।

3.3 धर्म और प्रकार्य

प्रकार्यवाद एक सेद्धांतिक उपागम है जिसमें किसी सामाजिक घटना का विश्लेषण उसके द्वारा समाज की एकता को बनाये रखने के लिये किये गये योगदान के रूप में किया जाता है। यह इस विचार के साथ आरंभ होता है कि एक समाज में मानव व्यवहार संरचित होता है। समाज के सदस्यों के बीच संबंध नियमों के द्वारा संगठित होते हैं। धर्म प्रकार्यात्मक है तथा सामाजिक व्यवस्था के अस्तित्व को सुनिश्चित करता है। धर्म एक सामाजिक संस्था है। प्रकार्यपारियों ने धर्म का उन प्रकार्यों पूर्वापेक्षाओं को पूर्ण करते हैं। धर्म और प्रकार्य की विवेचना विभिन्न समाजशास्त्रियों ने अलग–अलग रूप से निम्नानुसार की हैः–

3.3.1 रैडक्लिफ ब्राउन के अनुसार

प्रकार्यवादी रैडक्लिफ ब्राडन का मत है कि सामाजिक व्यवहार के विभिन्न पक्षों का कार्य व्यक्तिगत आवश्यक्ताओं की पूर्ति करना नहीं बल्कि समाज की सामाजिक संरचना को बनाये रखना है। सामाजिक संरचना समाज को बनाने वाले विभिन्न तत्वों या ईकाईयों का एक विशिष्ट प्रतिमान है और ''प्रकार्य'' सामाजिक व्यवस्था द्वारा निर्धारित व उसे बनाये रखने वाले विभिन्न निर्णायक तत्वों की वह क्रिया है जिसमें संरचनात्मक निरंतरता बनीं रहती है। अर्थात् प्रत्येक समाज में संरचन और उसके प्रकार्य महत्वपूर्ण होते हैं। स्पेन्सर के अनुसार सामाजिक संरचना के विभिन्न अंग जिस प्रकार के कार्य करते हैं उसी के अनुसार सामाजिक संरचना को एक निश्चित स्वरूप प्राप्त हो जाता है उदाहरणार्थ यदि समाज की धार्मिक संस्थायें इस प्रकार क्रियाशील है कि उससे धर्म गुरुओं को लाभ होता है तो उस समाज मे धार्मिक संरचना विकास होगा और इसका प्रभाव संपूर्ण सामाजिक संरचना पर ही पड़ेगा, फलस्वरूप समाज में विज्ञान का महत्व कम होगा । भारतीय समाज में विशेषतः ग्रामीण समाज में धार्मिक संस्थाओं की क्रियाशीलता के कारण ही अंधविश्वास, परंपरायें अधिक सशक्त है, विज्ञान नहीं।

धार्मिक विश्लेषण की एक विधि के रूप में संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम इस तथ्य पर जोर देता है कि धार्मिक व्यवस्थाओं की एक धार्मिक संरचना होती है जो कि अन्य

संरचनाओं से स्पष्टतः प्रथक होती है। इस धार्मिक संरचना के विभिन्न घटक या अंग अपने–अपने प्रकार्य करते हुये संतुलन या मतैक्य को बनाये रखते है। धर्मिक विश्लेषण में यह जानना जरूरी है कि धर्म कैसे सामाजिक एकता प्राप्त करता है। प्रकार्यवादी सोच के एक विशेषज्ञ किंग्सले डेविस कहते है कि धर्म इसे दो तरह से करता है प्रथम – धर्म समाज का एक भाग है यह समूह में सामान्य होता है इसके विश्वास और अनुभव समूह के प्रत्येक सदस्य द्वारा अपनाये जाते है। ईश्वर की पूजा जन साधारण काविषय होता है जो समुदाय में सामुदायिक रूप से प्रयोग किया जाता है। दूसरा – सामान्य विश्वास, सामान्य आस्थाओं के साथ समूह में प्रत्येक व्यक्ति में दिखाई देता है। इसे समूह के आदर्शों से ताकत मिलती है।

3.3.2 इमाइल दुर्खीम के अनुसार

प्रख्यात समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम ने अपने धर्म के सिद्धांत में धर्म की विस्तृत व्याख्या की । दुर्खीम ने धर्म के चार प्रकार्य– अनुशासन, संपर्क, जीवन प्रदान करना और मधुरता बताया है। धार्मिक कर्मकांड व्यक्ति को सामाजिक जीवन में स्वअनुशासित करते है। वहीं धार्मिक उत्सवों से व्यक्ति में जीवन के प्रति उत्साह मधुरता आती है। क्योंकि धार्मिक उत्सव व्यक्ति सामूहिकता में कई व्यक्तियों के संपर्क में रहकर मनाता है। धर्म एक मधुर प्रकार्य है जो व्यक्ति में उन भावनाओं की अनुभूति जमाता है जिससे व्यक्ति तनाव और विश्वास में हो रही कमी में ह्रास होता है एवं व्यक्ति में विश्वासों की भावनायें पुर्न स्थापित होने लगतीं है।

धर्म का प्रकार्यवादी सिद्धांत मुख्यतः समाजशास्त्रीय सिद्धांत पर आधारित है जिसे विलियन राबर्टसन स्मिथ, दुर्खीम, रैडक्लिफ ब्राउन, मैलिनोवास्की, मैक्स वेबर, पारसंस आदि ने विकसित किया है। प्रकार्यवादी मान्यता की प्रमुख मान्यता के अनुसार धर्म एक सार्वभौमिक तथ्य है जो सभी समाजों मे पाया जाता है और संपूर्ण समाज में सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने का आवश्यक प्रकार्य करता है। प्रमुख सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार, धर्म वास्तव में वैचारिकी और भावनात्मक रूप से एकता की पूर्ति करता है। धर्म क्या सामाजिक एकता स्थापित करता है?

3.3.3 किंग्सले डेविस के अनुसार

प्रकार्यवादी किंगस्ले डेविस ने इसे स्पष्ट करते हुये लिखा है कि धर्म दो माध्यमों से कार्य करता है। प्रथम– धर्म समाज के एक अंग के रूप में। प्रत्येक समूह में विश्वास और अभ्यास से प्रत्येक व्यक्ति अपने समूह का सदस्य बन जाता है। दूसरे रूप में ईश्वर की पूजा उपासना को समुदाय में जनसामान्य द्वारा मदद करना। ईश्वर की समाज में मान्यता प्राप्त प्रस्थिति होती है और जटिल समाजों में तो पुरोहितवाद एक मान्यता वर्ग के रूप में विकसित हुआ है। धर्म वास्तव में बांधने अर्थात जोड़ने का प्रकार्य करता है।

दुर्खीम ने धर्म के प्रकार्यों की व्याख्या करते हुये बताया है कि सामूहिक जीवन को दो भागों, साधारण और पवित्र में बाँटा जा सकता है। सभी धर्मों का संबन्ध पवित्र पक्ष से होता

है। ये पवित्र वस्तुयें समाज के प्रतीक या सामूहिक चेतना की प्रतिनिधि के रूप में होती है इसीलिये व्यक्ति स्वयं को उसके अधीन समझते हुये उससे प्रभावित होता है।

सभी धर्मों का संबन्ध पवित्र से होता है और जिन्हें वे पवित्र समझते हैं उन्हें अपवित्र या असाधारण से हमेशा दूर रखने का प्रयत्न करते हैं इसीलिये समाज में अनेक विश्वासों आचरणों, संस्कारों और उत्सवों का जन्म हुआ है। इन विश्वासों, आचरणों, संस्कारों के पीछे सम्पूर्ण समाज की अभिमति और दबाव रहता है। इसीलिये उसके समक्ष मनुष्य को झुकना पड़ता है। दुर्खीम ने आस्ट्रेलिया की अरूण्टा जनजाति के अध्ययन में स्पष्ट किया कि धार्मिक अनुभव एक सामूहिक उत्तेजना का कारण है। व्यक्ति अपनी उत्तेजना की अवस्था में अपने अस्तित्व को भी भूल जाता है क्योंकि उत्तेजना में वह किसी बाहरी शक्ति के अधीन एवं उसके द्वारा संचालित अनुभव पर आधारित होते हैं जिनका निर्देशकीय मूल्य होता है।

प्रकार्यवादीयों की मान्यतानुसार धर्म का अर्थ पवित्रता से है और सामूहिकता में हमारे धार्मिक संस्कार व्यक्ति ही नहीं वरन्पूरे समदाय के लिये उपयोगी होते है। धर्म समाज में व्यवस्था निर्धारित एवं व्यवस्था पोषक कार्यकलाप के रूप में प्रकार्य करता है। धर्म वास्तव में सम्पूर्ण रूप में एक सामाजिक तथ्य या सामाजिक चेतना का प्रतीक है। धर्म इकाइयों का गुच्छा है और इसकी ये विभिन्न इकाइयाँ विश्वास, संस्कार, कर्मकाण्ड, पवित्रता, अपवित्रता की अनुभूति आदि प्रतीकों में कार्यरत रहती है इसे स्पष्ट करते हुये दुर्खीम कहते है कि सभी समाजों में पवित्र वस्तुयें वे वस्तुयें है जा प्रथक् रखी जाती है और विविद्ध मानी जाती है। विश्वास और क्रियायें जो एक अकेले नैतिक समुदाय में संगठित होती है और सभी इसे अपनाते है। इस तरह स्पष्ट होता है कि धर्म के ये विभिन्न अंग या घटक विभिन्न भूमिकायों का निर्वहन करते हुये सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखते है। इसके अंतर्गत व्यवस्था में एक संतुलन भी रहता है क्योंकि किसी भी एक अंग में परिवर्तन होने पर दूसरी इकाइयां भी प्रभावित होने लगती हैं।

3.4 प्रकार्यवादी मान्यता

1. प्रत्येक समाज में धर्म एक अपेक्षाकृत स्थाई और सतत् संरचना के रूप में कार्यरत है।
2. प्रत्येक समाज में धार्मिक विश्वास, कर्मकाण्डों की एक समव्यवस्थित संरचना होती है।
3. प्रत्येक समाज में धर्म पवित्र–अपवित्र धारणाओं कें रूप में प्रकार्य करता है। पवित्र–अपवित्र की धारणायें सम्पूर्ण समाज को एक व्यवस्था के रूप में बनाये रखने की भूमिका निभाती हैं।
4. प्रत्येक समाज की सामाजिक संरचना प्रत्येक सदस्यों के धार्मिक मूल्यों के मतैक्य पर आधारित है।

धर्म के प्रकार्यवादी सिद्धांत में संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम अत्यंत महत्वपूर्ण होता

है। धार्मिक विश्लेषण की एक विधि के रूप में संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम इस तथ्य पर बल देता है कि धार्मिक व्यवस्थाओं की एक धार्मिक संरचना होती है जोकि अन्य संरचनाओं से स्पष्टतः प्रथक् होती है। इस धार्मिक संरचना के विभिन्न घटक या अंग अपने–अपने प्रकार्य करते हुये संतुलन को बनाये रखते हैं।

3.5 निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि धर्म, समाज में एकीकरण लाने की शक्ति है। धर्म एक ऐसा साधन है जो लोगों में यह भावना भरता है कि वे एक ही समाज से संबंधित है तथा समाज में दूसरों के साथ कुछ समानता रखते हैं सामाजिक वचनबद्धता तथा सामाजिक एकता से जुड़े विश्वासों को दर्षाने का यह एक साधन है। यह एक सामूहिक चेतना है। धर्म समाज का प्रकार्यात्मक पक्ष है। ब्राउन ने धार्मिक व्यवस्थाओं की धार्मिक संरचना को विवेचित किया है तो वहीं इमाइल दुर्खीम ने धर्म के प्रकार्यों की व्याख्या सामूहिक जीवन के दो भागों साधारण और पवित्र में बाँटा है। किंग्सले डेविस ने धर्म को समाज के एक अंग और पूजा उपासना के द्वारा जनसमुदाय की मदद करने के रूप में विवेचित किया है।

3.6 प्रश्नावली

1. निम्नांकित प्रश्नों के सामने सही (√) या गलत (X) का निशान लगाइये ।
   - a- ब्राउन प्रकार्यवादी चिंतक है।
   - b- पवित्र और साधारण की अवधारणा पारसंस ने प्रस्तुत की।
   - c- गाय की पूजा एक धार्मिक विश्वास है।
   - d- प्रत्येक समाज में धर्म एक स्थाई संरचना है।
2. जोड़ी बनाइये :–
   - a- दुर्खीम – (1) प्रकार्यवादी
   - b- मैलिनोवस्की – (2) समाजशास्त्री
   - c- धर्म – (3) मानवशास्त्री
   - d- डेविस – (4) धार्मिक विश्वास
   - e- पूजापाठ – (5) पवित्रता
3. प्रकार्य क्या है?
4. धर्म के प्रकार्य लिखिये ।
5. दुर्खीम के प्रकार्यवादी विचार लिखियें ।

प्रश्न उत्तर

1- (a) – (√), (b) - (X), (c) - (√), (d) - (√)

2- (a) – (2), (b) - (3), (c) - (5), (d) - (1), (e) – (4)

इकाई–4
धार्मिक विश्वासों का अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 धर्म और विश्वास की मान्यता

4.3.1 विश्वासके विभिन्न स्वरूप

4.3.2 धर्म और अलौकिक शक्ति

4.4 अलौकिक शक्ति की प्रकृति

4.5 विश्वास के प्रकार

4.6 विविध धार्मिक विश्वास

4.7 निष्कर्ष

4.8 प्रश्नावली

4.1 उद्देश्य

इस इकाई मे आप जानेगे–

1 धर्म और विश्वास की मान्यता को समझ सकेगे।

2 विश्वास के विभिन्न स्वरूप को आप जान सकेगे।

3 धर्म और अलौकिक शक्ति को आप समझ सकेगे।

4 अलौकिक शक्ति की प्रकृति को आप समझेगे।

4.2 प्रस्तावना

धर्म का समाजशास्त्र में, धार्मिक विशवासों का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। क्योंकि जब हम किसी भी धर्म का अध्ययन करते है। तो उसके प्रारंभ से ही उसमें विश्वासों की अभिव्यक्ति स्पष्ट होने लगती है। अतः हमें निम्नांकित बातों को जानना आवश्यक है। धर्म और विश्वास , विश्वासों का स्वरूप और महत्व। विश्वास, एक शक्ति है जो समाज को संगठित और नियंत्रित करने का काम करती है। अतः धार्मिक विश्वासों को अध्ययन के अंतर्गत हमें यहाँ पर धार्मिक विश्वासों के स्वरूप और महत्व को जानना जरूरी है। इसीलिये आगे विश्वासों की मान्यता, अलौकिक शक्ति को विवेचित किया जा रहा है।

धर्म एक सार्वभौमिक एवं मौलिक सामाजिक घटना है। हर समाज में धर्म पाया जाता है

जहाँ मानव है वहीं धर्म है। धर्म की अभिव्यक्ति हर स्थान पर पाई जाती है। आलौकिक शक्ति में विश्वास करना ही धर्म है। मानव प्रारंभ से ही अलौकिक शक्ति में विश्वास करता आया है। उसका विश्वास है कि अलौकिक शक्तियों से भी आधिक शक्तिशाली कोई शक्ति है जो सांसारिक घटनाओं पर अपना नियंत्रण रखती है, इस शक्ति के प्रति समाज में अनेक प्रकार के विश्वास विकसित होते चले गये । इस तरह से हम देखते है कि विश्वास ही प्रत्येक धर्म की आधारशिला है।

4.3 धर्म और विश्वास की मान्यता

धर्म की विवेचना करते हुये हॉबेल ने कहा है कि धर्म अलौकिक शक्ति में विश्वास पर आधारित है जिसमें आत्मवाद एवं मानावाद सम्मिलित है।

गिलिन और गिलिन के अनुसार धर्म के समाजशास्त्रीय क्षेत्र के अंतर्गत एक समूह में अलौकिक से संबन्धित उद्देश्यपूर्ण विश्वास तथ इन विश्वासों से संबन्धित बाह्य व्यवहार, भौतिक वस्तुयें और प्रतीक आते है। वहीं ऑगवर्न एवं निमकॉफ के अनुसार – धर्म मानवोपरी शक्तियों के प्रति अभिवृत्तियाँ है।

धर्म की विवेचन में स्पष्ट होता है कि धर्म में कई प्रकार के विश्वास है कुछ धर्म आत्मवाद अर्थात् यह विश्वास रखता है कि हर वस्तु में जीवन या आत्मा होती है। वहीं कुछ धर्म मानावाद (Monaeism or Dynamism) में विश्वास रखते है अर्थात इनका विश्वास है कि प्रकृति में अवैयक्तिक सत्ता होती हैं कुछ धर्म टोटमवाद (Totemism) में विश्वास करते है। इनका मानना है कि विशिष्ट वस्तु, पौधे, पशु का समूह से रक्त संबन्ध है और वह समूह की रक्षा करता है इसी तरह कुछ धर्मों में जादू (magic) पर विश्वास किया जाता है। कुछ धर्म मानववाद (Humanism) में विश्वास करते है। वहीं कुछ अनेक देवी देवताओं में विश्वास करते है। इसे चार्ट में स्पष्ट किया गया हैं।

4.3.1 विश्वास के विभिन्न स्वरूप

विश्वास के विभिन्न स्वरूपों को समाजशास्त्रियों ने निम्नानुसार अलग–अलग स्वरूपों में विवेचित किया हैः–

विश्वास	– स्वरूप
प्रत्येक वस्तु में जीवन या आत्मा	– आत्मवाद
प्रकृति में अवैयक्तिकसत्ता	– मानावाद
विशिष्ट वस्तु, पौधे, पशु का समूह से रक्त संबन्ध	– टोटमवाद
मानव में विश्वास	– मानववाद
अनेक देवताओं में विश्वास	– बहुदेववाद

एक सर्वशक्तिमान ईश्वर में विश्वास – एकेश्वरवाद

एक समाज में एक विशिष्ट देवता पर विश्वास – विशिष्टवाद

4.3.2 धर्म और अलौकिक शक्ति

धर्म एक विश्वास है जिसमें अलौकिक शक्ति का प्रयोग किया गया है। अलौकिक शब्द को जॉनसन ने स्पष्ट किया है कि कोई भी वस्तु अलौकिक है जिसका अस्तित्व के विश्वास का आधार प्रमाण रहित हो । अलौकिक वस्तुओं के विषय में न तो विज्ञान यह सिद्ध कर सकता है कि उनका अस्तित्व है और ना ही यह सिद्ध कर सकता है कि उनका अस्तित्व नहीं है। ये विज्ञान से परे है अलौकिक, पवित्र देवता, देवियों, फरिस्ते होते हैं अलौकिक स्थान स्वर्ग, नर्क, एवं अलौकिक शक्तियाँ–पवित्र आत्मा, कर्म का सिद्धांत है। अलौकिक शक्ति वास्तव में मानव का विश्वास है। गिलिन एण्ड गिलिन ने भी लिखा है कि अलौकिक क्षेत्र शक्ति से पूर्ण होता है। अलौकिक शक्ति, बिजली के समान लाभदायक या हानिकारक हो सकता है। धार्मिक विश्वास के कारण ही व्यक्ति इनके प्रति एक आदर का भाव रखता है। इस भाव को ही हम पवित्रता (sacredness or sanctity) कहते है।

4.4 अलौकिक शक्ति की प्रकृति

समाज में धर्म की व्याख्या करते हुये विद्वानों ने कहा कि धर्म को विभिन्न अलौकिक शक्तियों के अनुसार देखना होगा। आदिम समाज से वर्तमान समाज तक समाज विविध अलौकिक शक्तियों में विश्वास रखता है। हमारे अलौकिक शक्तियों की प्रकृति के विश्वासों को निम्न चार्ट में प्रदर्षित किया गया हैः–

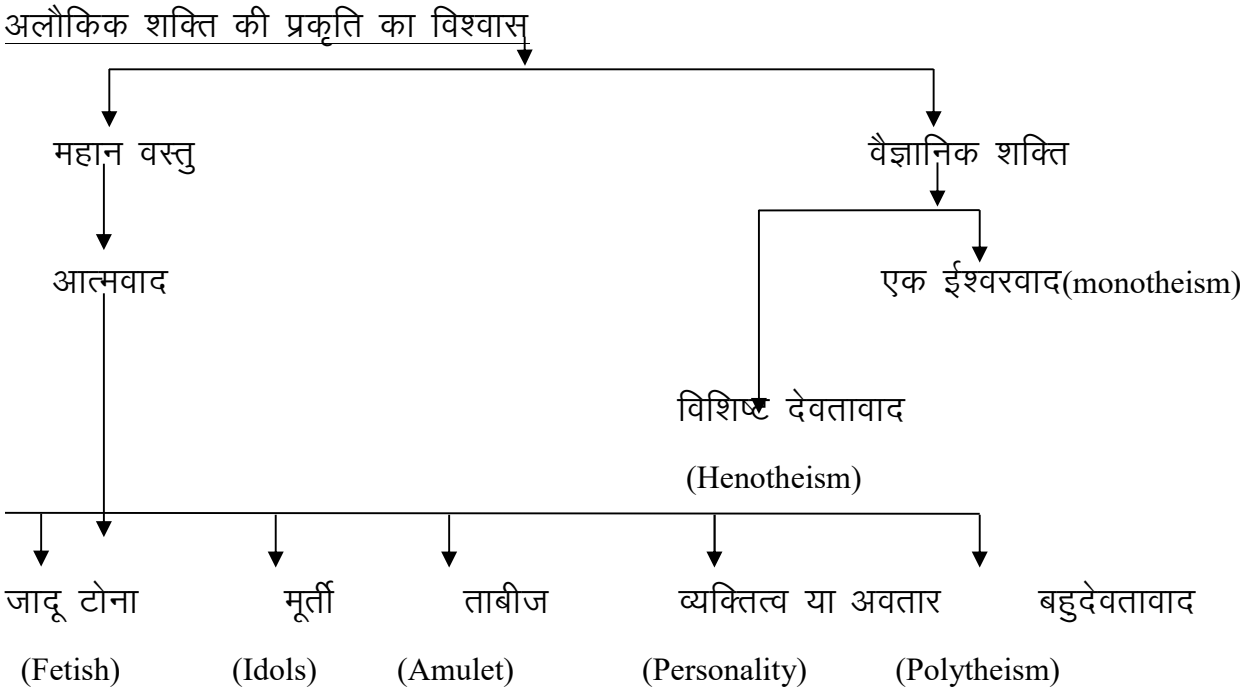

अलौकिक के प्रति विश्वास को किंग्सले डेविस ने अनुभवपरि (Superempirical) का प्रयोग किया है। कोई वस्तु, प्राणी, स्थान जब अनुभव के आधार पर सिद्ध या असिद्ध नहीं किया जा सकता तो उसे अनुभवपरि कहा जाता है। इसी तरह डेविस और मुलर ने धर्म का संबन्ध पवित्र विश्वासों से व्यक्त किया है। इनका मानना है कि धर्म में पवित्र वस्तुओं के प्रति सर्वव्यापी विश्वास रहता है।

1. धर्म में अनुराग करने वाला अलौकिक शक्ति और धार्मिक विश्वास में अंतर करता है।
2. व्यक्ति जब अनेकत्व में विश्वास करता है तो वह विश्वास व्यवस्था के आधार पर प्रत्येक संस्कृति में उसे देखता है।
3. धार्मिक विश्वासों में विश्वास (Belief) को भी विद्वानों ने अलग अलग संज्ञा दी है।

4.5 विश्वास के प्रकार

धर्म और विश्वास एक दूसरे के पूरक होते हैं। हमारे धार्मिक प्रकार्य वास्तव में हमारे धार्मिक विश्वासों के माध्यम से किये जाने वाले विशिष्ट व्यवहार हैं, जिन्हें अनेकतत्व, अंधविश्वास और अलौकिक शक्ति के रूप में समाज में देखा जाता है।

विश्वास (Belief)

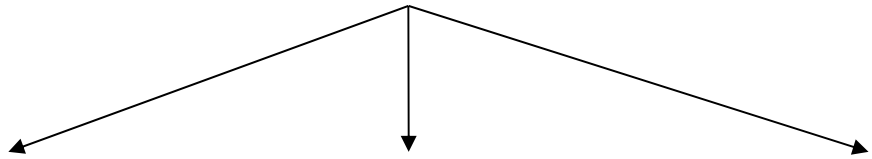

अनेकत्व विश्वास (Pluralist Beliefs) | अंधविश्वास (Superstition) | अलौकिक शक्ति (Supernatural Power)

1. अनेकत्व में विश्वास वह धार्मिक मनोवृत्ति या नीति है जो समाज में विद्यमान धार्मिक विश्वासों की विविधता को व्यक्त करती है।
2. अंध विश्वास, वे धार्मिक विश्वास है जो मानवीयता या वैज्ञानिक ज्ञान से संबन्धित नहीं होते है। बल्कि ये किसी के व्यवहार या कुछ जादुई क्रियाओं से प्रभावित रहते हैं।
3. अलौकिक शक्ति वह विश्वास है जिसका प्रकृति के सिद्धांत या आलंकारिक (Figuratively) तत्वों से कोई संबन्ध नहीं होता है। बल्कि यह प्रकृति से ऊपर किसी अदृष्य शक्ति से संबन्धित है।

धार्मिक विश्वास वे शक्तिशाली विश्वास है जो मानव सभयता को नियंत्रित करते है। इनकी उपस्थिति विशेषता और पूजा सार्वभौमिक मानव जीवन है। अलौकिक नेतृत्व के मूल्य और व्यवहार इसके केंद्र में रहते है। विद्वानों के अनुसार धार्मिक विश्वासों के अंतर्गत अंधविश्वास और पारंपरिक धर्म में अतात्विकता पर विश्वास किया जाता ळै जिसमें विश्व को

''कारण और प्रभाव नियम '' के अंतर्गत नहीं रखा जाता है। एवं ऐसा माना जाता है कि अपदार्थवादी ताकतें हमारे जीवन को प्रभावित करतीं है।

अनेकतत्व में विश्वास वह विश्वास व्यवस्था है जो प्रत्येक संस्कृति में किसी एक को जिम्मेदार मानती है। इसमें व्यक्ति अलग–अलग धर्मों या पारंपरिक विश्वासों में विशेष अनुभवों के सम्मिलन पर विश्वास करता है। प्रत्येक धर्म किसी सिद्धांत और अनुभव को अलग–अलग तरीकों से व्यक्त करता है। धार्मिक विश्वासों की व्याख्या में विद्वानों ने स्पष्ट किया कि समाज में प्रारंभ से ही धर्म के प्रति लोगों का विश्वास अटूट रहा है और इन विश्वासों के कारण ही धर्म आज भी एक सार्वभौमिक और महत्वपूर्ण संस्था के रूप में प्रचलित है।

4.6 विविध धार्मिक विश्वास

धर्म के अध्ययन के अनुसाार, विभिन्न धर्मो में अलग–अलग विश्वास प्रचलित है जिनके प्रति समाज में सार्वभौमिक आस्थायें प्रचलित है यहाँ पर हम कुछ विशिष्ट धार्मिक विश्वासों के माध्यम से धर्म की विवेचना कर रहे है।

धर्म वह विश्वास है जिसमें लोगों की आस्था होती है। धार्मिक विश्वास अलौकिक शक्तियाँ, प्रकृति, है। समाज में इनके प्रति आदर और श्रद्धा होती है ये अलौकिक शक्तियाँ समाज को संगठित करने के साथ ही साथ नियंत्रित भी रखतीं है।

ईसामसीह – सामान्य व्यक्ति – अलौकिक विश्वास

शिवलिंग – एक पत्थर – अलौकिक शक्ति का प्रतीक

गौतम बुद्ध – राजकुमार – अलौकिक विश्वास

सांई बाबा – सामान्य व्यक्ति – अलौकिक शक्ति

गंगा नदी – सामान्य जल – पवित्रजल का विश्वास

गाय – एक प्राणी – धार्मिक भावना

गोबर – गाय का अवशिष्ट – पवित्रता एवं शुद्धता का विश्वास

रोजा – दैनिक क्रिया – पवित्रता का विश्वास

क्रास (†) – प्रतीक चिन्ह – रक्षक के रूप में विश्वास

अग्नि – प्राक्रतिक क्रिया – शुद्धता

उपरोक्त धार्मिक क्रियायें, व्यक्ति, वस्तुयें वास्तव में सामान्य है लेकिन सदियों से इनके प्रति मानव समाज में एक विश्वास इस हद तक व्याप्त है कि व्यक्ति आंख बंद करके इस पर विश्वास करता है और मानता है कि यही उसके रक्षक है और ये संकट के समय में मुक्ति दिलायेंगें ।

4.7 निष्कर्ष

इन धार्मिक विश्वासों की तरह ही टायलर और स्वेंसर का मत था कि ''आत्मा'' पर विश्वास ही धर्म है। मनुष्य का मानना है कि ''आत्मा'' एक अलौकिक शक्ति है जो मनुष्य को गतिशील करती है उसकी इच्छाओं पर नियंत्रण रखती है एवं जब तक यह शक्ति मनुष्य के साथ रहती है तब तक मनुष्य सक्रिय रहता है लेकिन मनुष्य का साथ छोडते ही सक्रियता खत्म हो जाती है। अतः स्पष्ट होता है कि धार्मिक विश्वास एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, जो प्रत्येक समाज संस्कृति और व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं।

4.8 प्रश्नावली

1. निम्नांकित प्रश्नों के सामने सही (√) या गलत (X) का निशान लगाइये ।
   - a- धर्म अलौकिक शक्ति में विश्वास है ।
   - b- आत्मवाद की मान्यता है कि हर वस्तु में आत्मा होती है।
   - c- टोटमवाद की मान्यता है कि हर वस्तु में आत्मा है।
   - d- जदू टोना वैज्ञानिक स्वरूप है।
2. जोड़ी बनाइये :–
   - a- अनुभवपरि – (1) प्रकृति में अवैयक्तिक सत्ता
   - b- टोटम – (2) किंग्सले डेविस
   - c- ईसामसीह – (3) मुस्लिम क्रिया
   - d- रोजा – (4) हिन्दू आस्था
   - e- गाय – (5) अलौकिक व्यक्तित्व
3. धार्मिक विश्वास स्पष्ट कीजिये।
4. धार्मिक विश्वास का अर्थ लिखिये।
5. धार्मिक विश्वास की विशेषतायें एवं प्रकार लिखिये।

उत्तर – 1-(a) – (√), (b) - (√), (c) - (X), (d) - (X)

2- (a) – (2), (b) - (1), (c) - (5), (d) – (3), (e) – (4)

इकाई–5
धार्मिक प्रतीकों का अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 प्रतीक की व्याख्या

5.3.1 प्रतीक की परिभाषा

5.3.2 प्रतीक की विशेषता

5.3.3 प्रतीक की उत्पत्ति

5.4 प्रतीकवाद

5.5 प्रतीक के प्रकार

5.6 धार्मिक विश्वासों के प्रतीक

5.7 धार्मिक जीवन और कर्मकाण्ड

5.8 निष्कर्ष

5.9 प्रश्नावली

5.1 उद्देश्य

इस इकाई मे आप जानेगे–

1.प्रतीक का अर्थ और विशेषतायों की विवेचना करेगे।

2.प्रतीक की उत्पत्ति और प्रतीकवाद की विवेचना को समझ सकेगे ।

3.प्रतीक के प्रकार और भेद की व्याख्या करेगे।

5.2 प्रस्तावना

धर्म के समाजशास्त्र में धार्मिक प्रतीकों का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण अध्ययन है। सभी धर्मों में विविध प्रकार के प्रतीक व्यक्ति के साथ जुड़े रहते हैं ''प्रतीक'' एक धार्मिक विश्वास है जो व्यक्ति को अपने धर्म से जोड़ता है। ये प्रतीक समाज को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः यहाँ पर हम प्रतीकों के धार्मिक स्वरूपों को भी जानना जरूरी है।

धार्मिक प्रतीकों का मानव जीवन में बहुत अधिक महत्व है। प्रतीकात्मक स्वरूपों का मानव जीवन में बहुत अधिक प्रयोंग होता है। मानव सभ्यता एवं संस्कृति का प्रमुख मौलिक

आधार प्रतीकात्मक स्वरूप होता है। मानव संस्कृति प्रतीकों पर ही विकसित हुई है। समाज में यदि प्रतीक ना होते, भाषा ना होती तो मानव संस्कृति का विकास ही नहीं हो सकता था। अर्थात प्रतीकों के कारण ही भाषा एवं कला का विकास हुआ है। ''प्रतीकात्मक स्वरूपों'' को समझने के पूर्व हम प्रतीक (Symbol) का अर्थ जानने का प्रयत्न करेंगे । प्रतीकों का अर्थ जानने के साथ ही साथ प्रतीकों के धार्मिक स्वरूप को भी जानना अत्यंत आवश्यक है।

5.3 प्रतीक की व्याख्या

प्रतीक, मानव संस्कृति की विशेषता है अर्थात् प्रतीक पर ही मानव संस्कृति विकसित हुई है अतः सर्वप्रथम हमें प्रतीक को जानना जरूरी है।

प्रतीक शब्द का प्रयोग उस वस्तु के लिये किया जाता है जो किसी उद्देश्य, विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है अर्थात् किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। प्रतीक किसी न किसी अन्य वस्तु या भाव का प्रतिनिधित्व करता है। इन्गें (Inge) ने इसे उदाहरणों से स्पष्ट किया है। ''झड़ते हुये पत्ते'' मानव की नश्वरता के प्रतीक है। ''बहती हुयी सरिता'' जीवन स्त्रोत के प्रवाह को प्रतिकारित (Symbolise) करती है। इसी प्रकार मानव जीवन अगणित प्रतीकों का सहारा लेकर अभिव्यक्त करता है। मानव सभ्यता एवं संस्कृति का जो विकास सम्भव हो सका है, वह प्रतीकों पर ही आधारित है।

5.3.1 प्रतीक की परिभाषा

प्रतीक जीवन का अभिन्न अंग है। इसे विद्वानों ने निम्नानुसार पारिभाषित किया हैः–

पाईपर ने प्रतीक को परिभाषित करते हुये लिखा है कि प्रतीक अनिवार्यतः एक भौतिक वस्तु या प्रक्रिया होती है जो एक ऐसे अर्थ का प्रतिनिधित्व करता है जो समान्य प्रत्यक्षीकरण के परे होता है।

बोसंकवे (Bosanquet) के अनुसार प्रतीक प्रत्यक्ष स्वरूप से अलग अदृष्य वास्तविकता की अनुभूति का रूपक स्वरूप है। इवान्स प्रिचार्ड के अनुसार– प्रतीक प्राकृतिक और अतिप्राकृतिक के अंतर को स्पष्ट करता है। उदाहरणार्थ एक विशेष व्यक्तित्व या समूह को प्रतीकात्मक रूप से मगरमच्छ या अन्य किसी पशु से आत्मा के रूप में जोड़ा जाता है। यहं पर जरूरी नहीं कि वह पशु आत्मा/प्राण (Spirits) हो ।

हरमन के अनुसार प्रतीक के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह प्राकृतिक हो और ना ही केवल सम्बोधन तथा प्रदर्शन में निखरा हुआ हो अपितु वह एक उचित माध्यम एवं साधन होता है जिसमें विचारों का प्रदर्शन और संबोधन हो जाता हैं। प्रतीक वास्तव में सामाजिक अन्तः क्रिया का मूल तत्व है जो सामाजिक संबन्ध और संचार को उपलब्ध करते है। वास्तव में प्रतीक अमूर्त अर्थों एवं भावों को अभिव्यक्त करने का एक साधन एवं माध्यम है।

5.3.2 प्रतीक की विशेषता

प्रतीक की विद्वानों ने निम्नांकित विषेषताऐं बताई हैंः–

1. प्रतीक की स्वयं में कोई वास्तविकता (Reality) नहीं होती है।
2. प्रतीक ज्ञान का आधार है।
3. प्रतीक, प्रकार्यात्मक होते है।
4. प्रतीक, संचार का साधन है।
5. प्रतीक, मानवीय अतःक्रिया का परिणाम है।

5.3.3 प्रतीक की उत्पत्ति

''प्रतीक'' एक रहस्यवादी साधन है जो आध्यात्मिकता से परिचय कराता है। राधाकमल मुकर्जी के अनुसार प्रतीक की सृष्टि केन्द्रीय नाड़ी व्यवस्था में स्थित विद्युत स्नायुजाल (Elecro - neuralnets) के द्वारा होती है। प्रतीकों की उत्पत्ति का मुख्य कारण मनुष्यों की सामाजिकता है। मनुष्यों में वह क्षमता होती है जिससे वह अर्थ बोध कर पाता है। मनुष्य का सामाजिक जीवन प्रतीकों पर आधारित है क्योंकि प्रतीक ही सामाजिक संबन्ध और संचार को संभव बनाते है।

लेंगर (Lenger) के अनुसार, प्रतीक मनुष्यों की मौलिक आवश्यकता है और यह मौलिक आवश्यकता जो कि सिर्फ मनुष्य में ही स्पष्ट है, प्रतीकीकरण की आवश्यकता है। प्रतीक निर्माण का कार्य मनुष्य की प्राथमिक क्रिया है।

5.4 प्रतीकवाद

प्रतीकों के माध्यम से किसी विषय का प्रतिविधान करना ही प्रतीकवाद है। प्रतीकीकरण मनुष्य का सहज स्वभाव है। पशुओं तथा ध्वनि उत्पन्न करने वाले विषयों का संकेत, आदिम मनुष्य उनके समान ही आवाज उत्पन्न करके करता था । प्रारंभ में प्रतीक के रूप में मनुष्य ने रेखायें और चित्र खींचना भी शीघ्र सीख लिया था । इस तरह चित्रमय वर्णलिपि आदि प्रतीक है।

मनोविश्लेषणवादियों के अनुसार प्रतीकात्मकता शब्द का अर्थ भावुकता से युक्त वह व्यवहार है जो किसी दबी हुई प्रवृत्ति की अचेतन संतुष्टि करता है। अर्थात् यदि कोई व्यक्ति जब पूर्णरूप से उदासीन किसी व्यक्ति के समक्ष ऊंची आवाज में विरोध करता है, तो वह अचेतन अवस्था में अपने पिता की याद करता है एवं अपनें पिता के प्रति शत्रुता की दबी हुई प्रवृत्ति का प्रदर्शन करता है। क्योंकि पिता भी उसको उसी प्रकार चिल्लाकर डाँटते थे।

प्रतीकात्मकता शब्द का जिन विविध अर्थों में प्रयोग होता है उससे इसकी दो स्थायी विशेषतायें प्रकट होती है प्रथम – यह कुछ व्यवहारों का एक स्थानापन्न है जो यह प्रकट करता है कि प्रतीकात्मकता के जो अर्थ होते है वे अनुभव द्वारा ही प्रकट रूप में प्राप्त नहीं

किये जा सकते। दूसरी – विशेषता यह है कि इसके स्वरूप या आकार मात्र से मालूम पड़ने वाले अर्थ की अपेक्षा इसका अर्थ एवं महत्व अधिक व्यापक हुआ करता है। उदाहरणार्थ कुछ समाज में खीची गई कुछ विशेष प्रकार की रेखाओं का महत्व केवल सजावट या बनावट तक ही सीमित हो सकता है, परन्तु किन्ही अन्य समाजों में वैसी ही रेखाओं का महत्व देवता या हत्या का प्रतीक माना जाता है। इसी तरह अनजाने में आँख झपकाने एवं भद्दे ढ़ंग से किसी की ओर देखकर आँख झपकाने में महत्वपूर्ण अंतर है।

प्रतीकात्मक रूप से प्रथम प्रकार में हम प्रतीक को परिचयात्मक प्रतीकात्मक (Referential Symbolism) कह सकते है। उदाहरण स्वरूप मौखिक भाषण, राष्ट्रीय ध्वज, रेल्वे स्टेशन पर गार्ड द्वारा प्रयोग की जाने वाली झंण्डियां आदि अन्य प्रकार के प्रतीक जिनसे किसी वस्तु की सूचना या परिचय में सुगमता मिलती है। वही प्रतीकात्मक रूप से दूसरे प्रकार के संक्षिप्त प्रतीकात्मकता (Condensed Symbolism) कहते है। ये प्रत्यक्ष प्रकटीकरण के लिये स्थानापन्न व्यवहार के रूप में संक्षिप्त है तथा इनकी सहायता से चेतन या अचेतन ढंग से उदेगात्मक तनावों से मुक्ति प्राप्त की जाती है। वास्तविक व्यवहार में इन प्रतीकों में घनिष्ट संबन्ध है। इसी प्रकार लिखने– पढने के विशेष ढंग एवं उच्चारण तथा जबानी नारे परिचयात्मक प्रतीक माने जाते है परन्तु यह होते हुये भी ये उद्देश्यपूर्ण संस्कारों का रूप ले लेते है। शिष्टाचार (Etiquette) के अंतर्गत हमें प्रतीकात्मकता को दो पहलुओं एक स्पष्टतः प्रतीक रूप में और दूसरा समाज की रूचि को स्पष्ट करता है। शिष्टाचार के गहरे अर्थ है।

5.5 प्रतीक के प्रकार

धर्म, प्रतीकों की एक व्यवस्था है। धार्मिक प्रतीक अत्यधिक प्रभावषाली होते हैं। मनुष्यों में प्रतीक ऐसी स्थिति प्रोत्साहित करते हैं जो उन्हें कालातीत बना देता है। गीर्ट्ज का मानना है कि धार्मिक प्रतीक जैसे टोटम में श्रद्धा तथा उनकी पूजा से समाज में एकता बनी रहती है।। अतः प्रतीकों की व्याख्या करते समय हमें इसके प्रकारों को जानना भी जरूरी है। विद्वानों के अनुसार प्रतीक दो प्रकार के संदर्भीय और संघनित होते है। संदर्भीय प्रतीकों के अंतर्गत ध्वज, रासायनिक तत्वों के चिन्ह, लिपि में व्यक्त शब्द आते हैं वहीं संघनित प्रतीकों में धार्मिक कृत्य, मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया आती है। प्रतीकों के दो प्रमुख भेद – वास्ततिक (Realistic Symbols) और अमूर्त प्रतीक (Abstract or Expressionist Symbols) है।

समाज से प्रतीक का घनिष्ठ संबन्ध है। वास्तव में मानव समाज का आधार ही प्रतीकों पर टिका हुआ है। प्रतीकों के कारण ही मानव ने भाषा का विकास किया है। भाषा के कारण अनुभव एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता है। प्रतीकों से ही हम अपनी सभ्यता और संस्कृति का विकास कर सके है। हम मूलतः प्रतीकों के माध्यम से ही सोचते है।

5.6 धार्मिक विश्वासों के प्रतीक

धार्मिक जीवन में प्रतीक का अत्यंत महत्व है। धार्मिक संस्कार, कर्मकाण्ड, प्रतिमायें, मंदिर आदि का एक विशिष्ट अर्थ और महत्व होता है। ईश्वर निराकार है उसका नाम और

उसकी प्रतिमा/मूर्ती ही उसका प्रतीक है। ओंकार, भोले, सांईनाथ आदि शब्द इसके शाब्दिक प्रतीक है। सूर्य भारत ही नहीं विश्व के अन्य देशों में भी शक्ति, ज्योति या प्रकाश का प्रमुख प्रतीक माना जाता है। जहाँ शंख, चक्र, गदा, गरूड़ – विष्णु जी के प्रतीक हैं वहीं नन्दी, त्रिशूल – शिवजी के और हंस–ब्रम्हाजी का प्रतीक है। उपनिषदों में आत्मा का प्रतीक पक्षी माना गया है देवताओं के वाहन भी स्वयं देवताओं के प्रतीक माने जाते है। चूहा – गणेशजी का, मोर – कार्तिकेय का, उल्लू – लक्ष्मीजी का प्रतीक है। वहीं भैंस के स्वरूप वाला महिषासुर क्रूरता और पशुभाव का प्रतीक है। इसी तरह धार्मिक कर्मकाण्डों में प्रयुक्त आसन, मुद्रा का एक विशिष्ट प्रतीकात्मक अर्थ होता है।

समाज में प्रतीकों का विशेष महत्व है। प्रमुख धार्मिक प्रतीक ये हैं। :–

धार्मिक विश्वासों के प्रतीक :–

ईसाई ईसाई हिन्दू

इस्लाम बौद्ध चीनी

सिक्ख पारसी हिन्दू

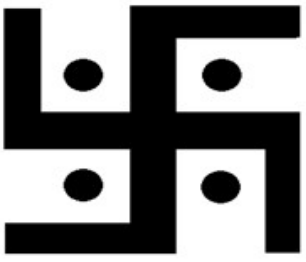

5.7 धार्मिक जीवन और कर्मकाण्ड

धर्म का एक महत्वपूर्ण घटक कर्मकाण्ड है। कर्मकाण्डों के माध्यम से समाज यथार्थ से

संबंध स्थापित करता है जिसे गीर्ट्ज ने पवित्र व्यवहार कमे रूप में पारिभाषित किया है। कर्मकाण्डीय कृत्यों के संपादन से धार्मिक अवधारणाओं की यथा तथ्यता और सच्चाई पुर्नवलित होती है।

धार्मिक जीवन में कर्मकाण्ड (Ritual) का विशेष महत्व होता है। मानव जीवन आवश्यकताओं का पुंज है। और इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली वस्तुओं, व्यक्तियों और घटनाओं की प्रतिमा (Image) हमारे मस्तिष्क में अपनी जगह बना लेती है। इन प्रतिमा का प्रयोग सन्तुष्टि प्रदान करने वालें प्रतीक के रूप में किया जाता है वहीं दैवीय शक्तियों को भी हम प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करते है। मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने एवं दुखों से बचने के लिये हमेशा दैवीय शक्तियों को प्रसन्न करने के लिये विभिन्न अनुष्ठान, कर्मकाण्ड करता है।

धार्मिक जीवन में कर्मकाण्ड की तरह ही पौराणिक आख्यान भी प्रतीक स्वरूप महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। ये प्राचीनता के परिचायक है। पौराणिक आख्यान में सृष्टि की उत्पत्ति, प्रकृति, देवी देवता, से जुड़ी हुई कथायें होती है। रामायण, महाभारत, सत्य–नारायण की कथा, वैभवलक्ष्मी, शिवपुराण आदि पौराणिक आख्यानों का प्रतीकातमक महत्व सभी के जीवन में है।

5.8 निष्कर्ष

धार्मिक प्रतीकों का अध्ययन, एक महत्वपूर्ण अध्ययन है। धार्मिक प्रतीक समाज के लिये अत्यधिक प्रभावषाली होते हैं। समाज में पाप–पुण्य अर्थात् पवित्र–अपवित्र की अवधारणा को नैतिक और अभौतिक प्रतीकों द्वारा निरूपित किया जाता है। इस विश्लेषण से हमें प्रतीकों का स्वरूप प्रकार और महत्व पता चला है गीर्ट्ज ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है कि यदि व्यक्ति प्रतीकों द्वारा सृजित मानदंडों को स्वीकार नहीं करते हैं तो समाज उन्हें असंवेदनषील और सामान्य समझता है। अतः प्रतीकों का अध्ययन एक महत्वपूर्ण अध्ययन है।

5.9 प्रश्नावली

1. निम्नांकित प्रश्नों के सामने सही (√) या गलत (X) का निशान लगाइये ।

   a- भारतीय संस्कृति में प्रतीकों का विशेष महत्व है।

   b- ईश्वर निराकार है, उसका नाम और प्रतिमा उसका प्रतीक है।

   c- झण्डे और नारों का शिक्षा में विशेष महत्व है।

   d- चौराहे में लाल, हरी बत्ती डिजाइन के लिये लगाते है।

2. जोड़ी बनाइये :–

   a- पेंगेट – (1) प्रतीक संचार के साधन होते हैं।

   b- लेंगर – (2) प्रतीकीकरण मनुष्य का सहज स्वभाव है।

c- राधाकमल मुकर्जी – (3)प्रतीक मानव समाज में प्रकार्यात्मक होते है।

d- व्हाइट – (4) प्रतीक किसी भी प्रकार का भौतिक स्वरूप रख सकता है।

3. प्रतीक की विशेषतायें लिखियें।

4. प्रतीकवाद को स्पष्ट कीजिये।

5. प्रतीक के प्रकार लिखिये।

उत्तर

1- (a) – (√), (b) - (√), (c) - (X), (d) - (X)

2- (a) – (2), (b) - (3), (c) - (1), (d) – (4)

इकाई–6

अनुष्ठान का तुलनात्मक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 परिचय

6.2 अनुष्ठान क्या है?

6.2.1 अनुष्ठानों की अवधारणा

6.2.2 अनुष्ठानों की परिभाषाएं

6.3 अनुष्ठानों की विशेषताएँ

6.3.1 अनुष्ठान की जरूरत

6.3.2 अनुष्ठान की सचेतन और स्वैच्छिक प्रकृति

6.3.3 अनुष्ठान की आवृत्तिगत और शैलीगत शारीरिक क्रियाकलाप संबंधी विशेषता

6.4 अनुष्ठानों कें प्रकार

6.4.1 पुष्टिकारी अनुष्ठान

6.4.2 पापनाशक अनुष्ठान

6.4.3 अन्य प्रकार के अनुष्ठान

6.5 अनुष्ठान के सिद्धान्त

6.5.1 विकासात्मक सिद्धान्त

6.5.2 कार्यात्मक व्याख्या

6.5.3 मैलिनोस्की की प्रयोगात्मक खोज

6.6 अनुष्ठानों का महत्व

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त :

- धार्मिक और प्रतिदिन के काम काज में संलग्न अनुष्ठान का को समझ सकेंगें।

- समाजशास्त्री और मानवशास्त्री की परिप्रेक्ष्य से अनुष्ठान की जानकारी प्राप्त करेगें।
- समाज के लिए अनुष्ठान के महत्व को रेखांकित कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई का केन्द्र बिन्दु अनुष्ठान है। मानव स्वभाव के इस पक्ष ने भी विद्वानों का ध्यान अपनी ओर खींचा है। जब मनुष्य सामूहिक रूप से किसी धार्मिक गतिविधि में हिस्सा लेता है तो वह किस प्रकार का व्यवहार करता है। किसी भी मानव समूह में उभरने वाले इन धार्मिक कृत्यों को समाजशास्त्री और मानवशास्त्री किस प्रकार व्याख्या करते है।

6.2 अनुष्ठान क्या है?

अनुष्ठान पद की विभिन्न परिभाषाओं पर विचार करने के पूर्व आइए इस संक्षेप में यह जान लें कि अनुष्ठान है क्या? आज हम आम तौर पर एक ही तरह के कार्यो, बार–बार एक ही काम किये जाने और एक ही तरह की प्रक्रिया दुहराए जाने को, अनुष्ठान की संज्ञा दे देते है। मसलन ''परीक्षा का अनुष्ठान'' गणतंत्र दिवस समारोह का अनुष्ठान या ''कार्य की अनुष्ठानिक प्रकृति''। इन सभी उदाहरणों में और अन्य जगहों पर भी एकरूपता या युहराव दिखाने के लिए अनुष्ठान विश्लेषण का प्रयोग किया गया है और किया जाता है। 'अनुष्ठान' पद का यह प्रयोग गलत नहीं है। हम बाद में देखेंगे कि इन प्रयोग में इस पद का महत्वपूर्ण और अनिवार्य विशेषता छिपी हुई है।

पर अनुष्ठान पद का यह प्रयोग सटीक नहीं है और इसमें कई प्रकार की भूलें भी है। आमतौर पर बातचीत करने के क्रम में इसका इस प्रकार उपयोग किया जा सकता है। पर वैज्ञानिक स्तर पर हमें सटीक रूप से यह तय करना होगा कि मनुष्य की किस गतिविधि के अनुष्ठान कहना उचित होगा।

6.2.1 अनुष्ठानों की प्रकृति

एडवर्ड टेलर, जेम्स फ्रेजन, ब्रोनसिलोव मैलिनोस्की एमिले डर्खिम आदि विद्वानों ने विभिन्न संस्कृतियों में व्याप्त अनुष्ठानों का मानवजाति शास्त्रीय विवरण देते हुए अनुष्ठान पद के लिए दो अलग–अलग प्रकार की गतिविधियों का उल्लेख किया है। प्रकार की गतिविधियों का उल्लेख किया है।

(1) पहले प्रकार की गतिविधियों का संबंध मुख्य रूप से धार्मिक कार्यो और प्रथाओं से है। मसलन पूजा, कर्मकांड, मंत्रोच्चार, कई प्रकार के हाव भाव और भंगिमएं, ईश्वर के समक्ष नतमस्तक आदि क्रियाएँ जिनका उद्देश्य ईश्वर से आध्यात्मिक संवाद स्थापित करना होता है। इस प्रकार हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिख आदि धर्म के अनुयायियों का अपने मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरूद्वारों आदि में जाना और धार्मिक गतिविधियों और प्रथाओं का पालन करना अनुष्ठान कहला सकता है।

(2) कुछ अनुष्ठान व्यक्ति के जीवन चक्र से संबंधित भी होते है। व्यक्ति जब एक

सामाजिक चरण से दूसरे सामाजिक चरण में प्रवेश करता है तो इस समय कुछ अनुष्ठान किये जाते है।

सभी प्रकार के समाजों में जन्म से लेकर मृत्यु तक एक व्यक्ति विभिन्न चरणों से होकर गुजरता है और इस दौरान कई प्रकार के बदलाव भी आते है। इस प्रकार के बदलावों के समय कुछ गतिविधियाँ सम्पन्न होती है जिनकी प्रकृति अनुष्ठानिक होती है। समाजशास्त्री और मानवशास्त्री इस प्रकार के अनुष्ठानों को ''संक्रमण का अनुष्ठान'' कहते है। इस खंड की अगली दो इकाइयों (इकाई 07 और 08) में अफ्रीकी और दक्षिण पूर्व एशियाई समाज में व्याप्त इसी प्रकार के ''संक्रमण के अनुष्ठानों'' का जिक्र किया जाएगा।

6.2.2 अनुष्ठानों की परिभाषाएँ

अनुष्ठान शब्द की परिभाषा निर्धारित करना बहुत सरल कार्य नहीं है क्योंकि विद्वानों का इस पर मतैक्य नहीं है। इसके कई कारण है। सबसे पहला कारण यह है कि एक विद्वान का सैद्धान्तिक दृष्टिकोंण दूसरे विद्वान के सैद्धान्तिक दृष्टिकोंण से बिल्कुल उलट है। दूसरी बात यह है कि एक विद्वान अनुष्ठान के बारे में क्या जानना चाहता है।

इन दिक्कतों के बावजूद विद्वानों ने अनुष्ठानों की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ सामने रखी है–

और उन्होंने धर्म और समाज पर पड़ने वाले इसके प्रभाव पन भी विचार विमर्श किया है। इसके पहले वाले खण्ड ''धर्म का अध्ययन'' में धर्म संबंधी विकासात्मक और कार्यात्मक दोनों सिद्धान्तों की चर्चा की जा चकी है। अनुष्ठानों की परिभाषा पर विचार करते समय यह सिद्धान्त पृष्ठभूमि की भूमिका अदा करेंगे।

टेलर, फ्रेजर, मार्गन आदि विद्वानों ने आरम्भिक दौर में धर्म पर विकासात्मक दृष्टि से विचार किया है और उन्होने बताया है कि जिस प्रकार समाज की अन्य संस्थाओं का विकास समय के साथ–साथ धीरे–धीरे हुआ है उसी प्राकर धर्म की प्रकृति भी विकासात्मक है। टेलर और फ्रेजर दोनों का मानना था कि धर्म एक विकासात्मक विश्वास व्यवस्था है। इस विकास की प्रक्रिया में अनुष्ठान प्रथम चरण है। टेलर ने इस आरम्भिक चरण को ''चमत्कार'' या धर्म पूर्व चरण या जीववादी चरण कहा है। मनुष्य ने अपनी आरम्भिक अवस्था में, सपनों, प्रकृति के ''चमत्कारों'', नींद और मृत्यु के रहस्यों को समझने के लिए, आत्मा और एक अन्तरवासी व्यक्तित्व की कल्पना की और वह अनुष्ठान के साथ उसकी पूजा करने लगा। जीववादी चरण में इस अन्तरवादी व्यक्तित्व का फैलाव हुआ और पशुओं, पेड़ पौधों और यहां तक कि जड़ वस्तुओं की भी पूजा की जाने लगी (1958) में टेलर ने लिखा कि जीववादी चरण में ये अनुष्ठान काफी हद तक भावात्मक चमत्कार पूर्ण अतर्कसंगत और अंधविश्वास के पर्याय थे।

अनुष्ठान की विकासात्मक परिभाषा में दो महत्वपूर्ण कठिनाइयां है। सबसे पहले यह अनुष्ठान की बौद्धिक व्याख्या है और इसमें यह मान लिया गया है कि धर्म के विकास में होने वाले परिवर्तनों के तहत ही अनुष्ठानों का विकास हुआ है। टेलर के अनुसार विकास के इस

क्रम में चमत्कार से जीववाद और पुनः जीववाद से धर्म और फिर विज्ञान की ओर विकास हुआ है। एक प्रकार से यह अनुष्ठान संबंधी विशुद्ध मानवशास्त्रीय दृष्टिकोंण है। दूसरी तरफ टेलर ने अपना सर्वेक्षण मानव के आरम्भिक समाज में व्याप्त अनुष्ठानों तक सीमित रखा है। और वैज्ञानिक दृष्टिकोंण से इस प्रकार की अवधारणा न केवल अनुमान पर आधारित है बल्कि बहुत हद तक अटकल पर भी टिका हुआ है। इस सर्वेक्ष के तहत विश्व में व्याप्त संगठित धर्मो के अनुष्ठानों की भी व्याख्या नहीं की गयी है।

अपनी पुस्तक ''टोटे एन्ड टैबू'' (1918) में सिगमन्ड फ्रायड ने मानव क्रिया–कलापों को समझने के लिए लगभग इन्हीं मानदण्डों का उपयोग किया है। उनका मानना है कि अनुष्ठान मूलतः तर्क से परे होते है या यह एक प्रकार का प्रतीकात्मक विश्वास है जो फलवादी नहीं होते और इनमें तर्कसंगत ढंग से कुछ पाने की आशा भी नहीं की जाती।

फ्रायड ने अनुष्ठानिक व्यवहार को शास्त्र और आम समझ से अलग करते हुए धार्मिक प्रथाओं के भीतर अनुष्ठानिक व्यवहार के अनिवार्य मानसिक तत्व को सामने रखने की कोशिश करता है। फ्रायड ने अनुष्ठान के इस विश्लेषण में मूलतः यह समझाने की कोशिश की है कि एक सचेत मस्तिष्क किस प्रकार पवित्रता के संसार के साथ संवाद सीापित करता है। फ्रायड के अनुसार यह व्यवहार ''मानसिक'' हैं क्योंकि यह किसी भी प्रकार के अनुभवजन्य व्याख्याओं को मानने से इन्कार करता है। यहाँ तक कि फ्रायड ने धर्म को ''मनोग्रस्तता विषयक सामूहिक मनस्ताप'' की प्रथा के रूप में देखा है। इसके अनुसार सामूहिक रूप में पवित्रता के क्षेत्र में यह मानसिक क्रिया–कलाप ही अनुष्ठान सम्बन्धी व्यवहार है।

6.3 अनुष्ठानों की विशेषताएँ

सबसे पहले आइये हम इस बात पर विचार करें कि अनुष्ठान करते समय किन–किन चीजों की जरूरत पड़ती है। हम यह जानने की कोशिश करें कि व्यावहारिक स्तर पर अनुष्ठान करते समय किन अनिवार्य तत्वों की आवश्यकता होती है?

6.3.1 अनुष्ठान की जरूरत

अनुष्ठान में निम्नलिखित तत्वों का होना आवश्यक है।

(i) अनुष्ठान के लिए सीन

(ii) अनुष्ठान में हिस्सा लेने वाले लोग

(iii) अनुष्ठान की सामग्री

(iv) मौखिक और या शारीरिक क्रिया–कलाप

6.3.2 अनुष्ठान की सचेतन और स्वैच्छिक प्रकृति

अनुष्ठान संबंधी व्यवहार व्यक्ति के प्रतिदिन के जीवन का सामान्य व्यवहार नहीं है। विपरीत अनुष्ठानिक व्यवहार में शामिल होने के लिए इन अनुयायियों को एक खास का पालन

करना पड़ता है और एक निश्चित भूमिका अदा करनी पड़नी है जिसके अतीत स चले आ रहे कायदे कानून का भी पालन करना पड़ना है। यह कार्य वह रूप में और जागरूक होकर करता है। यहाँ सचेतन रूप में व्यक्तिगत स्वायत्ता का परित्याग कर दिया जाता है और अनुष्ठान की माँग के अनुसार वह उसका हिस्सा बन जाता है। उदाहरण के लिए ईसाई अनुष्ठान (मास) को ही लें। इसके अन्तर्गत अनुष्ठान एक तरह की भाव भंगिमा अपनाते है, एक तरह की शारीरिक गतिविधियाँ करते है, इस तरह से मौखिक उच्चारण करते है, आदि–आदि। इसमें व्यक्ति सचेतन रूप में अनुष्ठान की गतिविधियों में भाग ले रहा होता हैं। इस प्रकार की हिस्सेदारी यह प्रमाणित करता है कि एक धार्मिक अनुभव के तहत अनुयायी सजग रूप में हिस्सा लेते है। यही अनुष्ठान की सचेतन या सजग प्रकृति हैं।

अनुष्ठान धार्मिक व्यवस्था में व्याप्त प्रथाओं और विश्वासों का एक अंग होता हैं। अनुष्ठान के स्वैच्छिक तत्व को परिप्रेक्ष्य में रखकर समझना होगा। किसी भी धर्म का अनुयायी अनुष्ठान करते समय स्वेच्छापूर्वक अपनी व्यक्तिगत इच्छा को सामूहिक इच्छा के समक्ष समर्पित कर देता है। अपने स्वयं को स्वच्छापूर्वक समर्पित करने के बाद ही अनुयायी पवित्रता के उस क्षेत्र में प्रवेक्ष करता हैं जहाँ से उस असीम सत्ता के साथ वह संवाद स्थापित कर सकता लें।

6.3.3 अनुष्ठान की आवृत्तिगत और शैलीगत शारीरिक क्रियाकलाप संबंधी विशेषता

अनुष्ठान करते समय व्यक्ति स्पष्ट रूप से कई प्रकार की शारीरिक गतिविधियाँ करता है। इस प्रकार के शारीरिक हाव–भाव धार्मिक अनुभव के महत्वपूर्ण अंग होते है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन गतिविधियों और हाव–भावों के जरिये न केवल एक खास धार्मिक रीति–रिवाज का पता चलता है बल्कि यह उस धार्मिक रीति–रिवाज में व्याप्त अनुभव को आत्मसात करने का एक तरीका भी होता है। मनुष्य के शरीर का एक अपना महत्व है क्योंकि बचपन से ही एक शिशु विश्व के बारे में अपनी समझ विकसित करता है। इस समझ के तहत वह काल, समय, संख्या और व्यक्तिगत स्वायत्ता के बारे में जानकारी हासिल करता है। इस प्रकार अनुष्ठान के अन्तर्गत खास तरह के शैलीगत और आवृत्तिमूलक क्रियाकलापों को मात्र एक शारीरिक क्रिया नहीं समझनी चाहिए बल्कि यह एक प्रकार से असीम सत्ता से संपर्क स्थापित करने की प्रक्रिया होती है। मंदिरों में मंत्रों का उच्चारण और मुसलमानों द्वारा नमाज पढ़ा जाना इस प्रकार के उदाहरण है। हालांकि इस प्रकार आवृतिमूलक पद्धति बाहरी व्यक्ति के लिए उबाऊ और अर्थहीन लग सकती है पर इसमें भाग लेने वालों के लिए इसका एक विशेष अर्थ होता है और यह अर्थ उस धर्म विशेष से प्राप्त अनुभवों से गृहीत होता है। इस प्रकार के शैलीगत पद्धतिगत क्रियाकलाप का संबंध अनुष्ठान में अभिव्यक्ति पक्ष से होता है और यह किसी खास धर्म या धार्मिक रीति–रिवाज का प्रतिनिधित्व करता है, जैसे नवाज पढ़ना।

6.4 अनुष्ठानों के प्रकार

विभिन्न मानव समाजों में अनुष्ठानों के अलग–अलग रूप और प्रकार मिलते है। मनुष्य

अपनी कमजोरियों और सीमित क्षमताओं के अपने को हमेशा कमजोर समझता है। अपने इन कमजोरी के क्षणों में वह असीम सत्ता का आवश्यकता महसूस करता है। मानव जाति सम्बन्धी साहित्य में समाज में व्याप्त अनुष्ठानों के कई प्रकारों का जिक्र आता है। इन अनुष्ठानों का जिक्र करते हुए दो प्रकार की गतिविधियों का उल्लेख किया गया है। ये इस प्रकार से है।

(i) किसी भी संगठित धर्म की धार्मिक प्रथाओं से संबंधित अनुष्ठान और

(ii) जीवन चक्र से सम्बन्धित अनुष्ठान

6.4.1 पुष्टिकारी अनुष्ठान

इस प्रकार के अनुष्ठान सामाजिक स्तर में परिवर्तन और सामाजिक समुदायों में आपसी आदान–प्रदान से जुड़े होते है। इसलिए जन्म, विवाह, मृत्यु आदि से जुड़े अनुष्ठान संसार की सभी संस्कृतियों में पाये जाते है। और किसी भी सामाजिक समुदाय में ये व्यक्ति के स्तर में परिवर्तन को प्रतीकित करते हैं। इसके अलावा सामुदायिक आदान–प्रदान से संबन्ध अनुष्ठान आपसी बंधुत्व को प्रतीकित करते हैं और ये समुदाय के अस्तित्व के लिए जरूरी होते है तथा इस समुदाय के विभिन्न जातियों के आपसी सहयोग की ओर भी इशारा करते हैं। इस प्रकार के अनुष्ठानों में भाग लेने वाला व्यक्ति या समूह पूरे समुदाय को अपने साथ अपने को भावात्मक सतर पर गहरे रूप में जुड़ा हुआ महसूस करता है।

6.4.2 पापनाशक अनुष्ठान

इस दूसरे प्रकार के अनुष्ठानों को इवेन्स–प्रिंटकार्ड व्यक्तिगत या सामूहिक समूह की नैतिक और भौतिक खुशहाली से जुड़ा हुआ मानता है। जब भी व्यक्ति या समूह की नैतिक और भौतिक खुशहाली खतरे में पड़ती है तो इस प्रकार के अनुष्ठान कराये जाते है। जब प्रलय आता है या अकाल पड़ता है या महामारी फैलाती है तब इस प्रकार के प्रायश्चितकारी या पापनाशक अनुष्ठान सम्पन्न कराये जाते है। इस प्रकार के अनुष्ठानों में असीम सत्ता को प्रसन्न किया जाता है और इसमें प्रायश्चित का भाव भी होता है। विज्ञान और तकनीक के बढ़ते प्रभाव के कारण आधुनिक समाज में पापनाशक अनुष्ठानों का महत्व कम हुआ है। पर परम्परागत, लोक समाजों में व्यक्ति और समुदाय के जीवन में पापनाशक अनुष्ठान एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान माना जाता है।

6.4.3 अन्य प्रकार के अनुष्ठान

एंथोनी एफ. वैलेसे ने अपनी पुस्तक ''रेलीजियन एण्ड ऐन्थ्रोपोलिजकल व्यू, 1959'' में अनुष्ठानों के कई प्रकारों का उल्लेख किया है। उसका यह वर्गीकरण मंतव्य आधारित होने के साथ–साथ अनुष्ठानों के कार्यो पर भी आधारित है। ये निम्नलिखित है :

(क) तकनीकी अनुष्ठान– इन अनुष्ठानों का कार्य अनिवार्य तौर पर मानवेतर गतिविधियों पर नियंत्रण रखना हैं। ये कई प्रकार के है :

शकुन अनुष्ठान– विपदा, कष्ट, अन्याय आदि के कारणों की खोज और उसके

निवारण का कार्य इस प्रकार के अनुष्ठान के माध्यम से होता है।

तीव्रतामूलक अनुष्ठान– इसके माध्यम से भोजन से बढ़ोतरी, शिकार और मछली पकड़ने आदि में सफलता जैसी भौतिक उपलब्धियों में बढ़ोत्तरी की कामना की जाती है।

संरक्षात्मक अनुष्ठान– विपदा, दुर्भाग्य या महामारी जैसे पक्षों को दूर करने के लिए किया गया अनुष्ठान।

(ख) **चिकित्सामूलक और चिकित्सा विरोधी अनुष्ठान**– इन अनुष्ठानों का कार्य व्यक्तियों और समूहों की भलाई को बढ़ावा देना होता है। इसमें निम्नलिखित प्रकार के अनुष्ठान शामिल होते है :

निवारक अनुष्ठान– इसका उद्देश्य व्यक्तिगत बीमारी या विपदा दूर करना होता है।

जादू टोना और जादूगरी– यह अनुष्ठान दूसरों पर विपदा या कहर ढाये जाने के लिए सम्पन्न किया जाता है।

(ग) **वैचारिक अनुष्ठान**– इस प्रकार के अनुष्ठानों का उद्देश्य सामाजिक समूह, इसके मूल्यों और परम्पराओं पर नियंत्रण स्थापित करना होता है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित अनुष्ठान होते है :

जीवन चक्र के अनुष्ठान– ऐसे अनुष्ठान जो मनुष्य के जीवन चक्र में व्यक्तिगत स्तर में परिवर्तन को इंगित करते है।

सामाजिक तीव्रीकरण अनुष्ठान– सामूहिक बुधुत्व को मजबूत करने वाले अनुष्ठान, मसलन मुसलमानों द्वारा पढ़ी जानेवाली शुक्रवार की नमाज।

बगावत अनुष्ठान– यह अनुष्ठान समूह के सदस्यों के शुद्धिकरण के संबद्ध है।

(घ) **मोक्ष अनुष्ठान**– इस अनुष्ठान का उद्देश्य व्यक्तिगत कठिनाईयों को दूर करना है। इसके तहत निम्नलिखित अनुष्ठान आते है :

पुरोहित द्वारा किया गया अनुष्ठानः ऐसे व्यक्ति द्वारा कराया गया अनुष्ठान, जो दावा करता है कि उसे लोकोत्तर शक्तियाँ प्राप्त है और वह किसी का भी भला बुरा कर सकता है।

प्रायश्चित अनुष्ठानः इसका उद्देश्य व्यक्तिगत गलतियों के लिए माफी माँगना या प्रायश्चित करना होता है।

6.5 अनुष्ठान के सिद्धान्त

अनुष्ठान के बारे में एक आम राय बनाने के लिए विद्वानों ने तुलनात्मक अध्ययन और सिंद्धात प्रस्तुत किया। इसके तहत अनुष्ठान सम्बन्धी ऐसे तत्वों की खोज की गयी जो किसी संस्कृति विशेष से नही जुड़े हुए थे। विभिन्न संस्कृतियों का सर्वेक्षण करने के बाद तुलनात्मक

सिद्धान्त के माध्यम से अनुष्ठानों के बारे में एक आम राय कायम की गयी। विभिन्न संस्कृतियों से अनुष्ठान के जो अनिवार्य तत्व पाये गये उन्हीं को तुलनात्मक सिद्धांत में स्थान दिया गया। 19वीं शताब्दी के दौरान मानवशास्त्रीय और धर्म के विद्वानों ने अनुष्ठाना सम्बन्धी मानवशास्त्रीय आकड़े विकसित किये। इसमें विश्व के विभिन्न भागों में व्याप्त विकसित और अविकसित संस्कृतियों में प्रचलित विभिन्न अनुष्ठानिक गतिविधियों का उल्लेख किया गया है।

6.5.1 विकासात्मक सिद्धान्त

19वीं शताब्दी में सांस्कृतिक विकास वादियों जैसे एडंवर्ड टेलर और जेम्स फ्रेजर, ने अनुष्ठान के सिद्धांतों को विकास करने का आरंभिक प्रयास किया। टेलर के ''प्रिमिटिव कल्चर (1871) 1959 और फ्रेजर के'' द गोल्डन बॉ (1890) 1950 दोनों पुस्तकों में अनुष्ठान व्यवहार को समझने के लिए एक बुद्धिवादी दृष्टिकोण विकसित किया गया है। अनुष्ठान कहीं जाने वाली प्रथाओं को न तो ट्रेलर ने और न ही फ्रेजर ने अनुष्ठान कहा। लेकिन टेलर ने महसूस किया कि मनुष्य के विश्वास का विकास तीन चरणों चमत्कार धर्म और विज्ञान में हुआ है। ये विद्वान आदिम काल से (मनुष्य के चमत्कार काल में) जुड़ी प्रथाओं की ओर आकर्शित हुए। टेलर ने इन प्रथाओं को चमत्कारपूर्ण धार्मिक प्रथाएं कहा है। उसका मानना है कि मनुष्य सोना, मृत्यु भाग्य आदि घटनाओं का कारण नहीं जान पाया था और अपनी बुद्धि के अनुसार अपने आपको संतुष्ट करने के लिए उन्होंने इन क्रियाओं को चमत्कारपूर्ण मान लिया। टेलर का मानना है कि इसके कारण ही जीववाद विकास हुआ। यह चमत्कारपूर्ण धार्मिक व्यवहार का मूल रूप था।

जीववाद काल में मनुष्य जीवित और मृत वस्तुओं में चेतना और जीवनी की खोज करता था और इस काल के अनुष्ठान भी इसी प्रवृत्ति से जुड़े थे। आदिम मनुष्य के इसी प्रकार के बौद्धिक प्रयासों के कारण अनुष्ठानों का जन्म हुआ। टेलर का मानना है कि अनुष्ठानों का विकास चमत्कार और चमत्कारपूर्ण प्रथाओं से ही हुआ है। उनका यह भी मानना है कि चमत्कार के चरण और धर्म में एक स्पष्ट अंतर है। टेलर का मानना है कि समाजों के उदय के लिए ये चमत्कारपूर्ण प्रथाएं ही पहली स्पष्ट संस्थागत आधार बनी। फ्रेजर इन चमत्कारपूर्ण प्रथाओं को ''छद्म विज्ञान'' कहते हैं उसका मानना है कि इसके माध्यम से आदिम मानव ने व्यक्तिगत और सामूहिक स्तर पर व्याख्या करने की पद्धति विकसित की और उन तमाम अनबुझे सवालों का उत्तर ढूंढने का प्रयास किया जिनका सामना उन्हें रोज करना पड़ता था। वस्तुतः आदिम मानव ने प्रकृति के रहस्य जानने की कोशिश की और इसे समझने के क्रम में ही उसने चमत्कारपूर्ण प्रथाओं की संस्था को जन्म दिया।

6.5.2 कार्यात्मक व्याख्या

19वीं शताब्दी में विकासवादी विद्वानों ने धर्म का अध्ययन करते हुए धर्म और अनुष्ठान पर अपेक्षाकृत अधिक जोर दिया और इसके लिए उनकी आलोचना भी की गयी। इसके बाद भी विद्वानों ने धर्म का अध्ययन किया पर उन्होंने धर्म और अनुष्ठान पर बल देने की बजाय इन प्रश्नों का उत्तर खोजना शुरू किया कि मानव समाज में अनुष्ठानों की क्या भूमिका होती

है या मानव समाज में अनुष्ठान को किस प्रकार का कार्य करना चाहिए? समाजशास्त्रीय सिद्धांत में इस प्रकार के दृष्टिकोंण को कार्यात्मक दृष्टिकोंण माना जाता है। एमिले डर्खिम और मौलिनोस्की इस दृष्टिकोंण के प्रमुख प्रवक्ता थे। अपनी पुस्तक ''एलिमेंट्री फॉर्म्स ऑफ रिलिजियस लाइफ'' (1954) में डर्खिम ने धार्मिक जीवन के पक्षों पर विचार करते हुए नए ढंग से प्रश्न सामने रखे हैं और नए ढंग से खोज का प्रयास किया है। डर्खिम का मानना है कि इस संसार के सभी मानव समाजों में पवित्रता के संसार और अपवित्र के संसार के बीच एक स्पष्ट विभाजन है। पवित्रता और अपवित्रता के इस विभाजन का उपयोग करते हुए डर्खिम ने धर्म का एक सिद्धांत सामने रखा है जिसके अनुसार धार्मिक प्रथाएं और विश्वास किसी खास समुदाय विशेष के लिए एक प्रकार का सामाजिक कार्य करती है। इस प्रकार के सामाजिक कार्य को डर्खिम समाज में एकीकृत कार्य के रूप में देखता हैं। अपनी बात को और स्पष्ट करने के लिए डर्खिम ने पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के अरान्ता जनजाति के धार्मिक समारोहों का उल्लेख किया है जिनमें गणचिन्हों की पूजा सामुदायिक पूजा पद्धति को प्रतीकित करता ळें

इस प्रकार डर्खिम के अनुष्ठान संबंधी सिद्धांत में सभी मानव संस्कृतियों में व्याप्त अनुष्ठानों के बीच एक सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश की गई है। सभी संस्कृतियों के धर्म में पवित्रता और अपवित्रता का खाका बना हुआ है। पर इसमें एक समस्या है। डर्खिम ने कहीं भी पवित्रता और अपवित्रता के आधारों को स्पष्ट करने की कोशिश नहीं की है। क्या सभी संस्कृतयों में खास तरह की वस्तुएं और प्रतीक पवित्र माने जाते है। या यह अंतर अनुष्ठान में भाग ले रहे व्यक्ति के दिमाग की उपज होती है। या यूरोपीय विद्वानों ने मात्र अपनी सुविधा के लिए इस प्रकार का खाका बना लिया है और इस जटिल प्रश्न को व्यख्यायित करने में असफल रहे हैं क्योंकि यूरोपीय समाज में ऐसा कुछ नहीं पाया जाता। पवित्रता और अपवित्रता के इस विभाजन में डर्खिम को भी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। पवित्रता और अपवित्रता के इस उल्झे प्रश्न को बाद में मानवशास्त्रियों ने अपने प्रायोगिक अध्ययन से सुलझाने की कोशिश की है।

6.5.3 मैलिनोस्की की प्रयोगात्मक खोज

इस शताब्दी के आरंभ में किये गये गैर–यूरोपीय संस्कृति के मानवशास्त्रीय अध्ययन से अनुष्ठानों के सिद्धान्त को और बल मिला है। इसके तहत जनजातीय समाज के रोजगार के जीवन में वास्तविक रूप में निहित पवित्रता के क्षेत्र का अध्ययन किया गया है। मैलिनोस्की और इवेन्स–प्रिटकार्ड का अध्ययन इस दिशा में एक उल्लेखनीय प्रयास है।

मैलिनोस्की का अनुष्ठान संबंधी कार्यात्मक दृष्टिकोंण ''वेस्टर्न पेसिफिक आर्गुमेंटस आफ वेस्टर्न पेसिफिक'' (1922) में उल्लिखित बोब्रिएंड द्वीप समूह में रहने वाले लोगों के वास्तविक जीवन की खोजबीन में अभिव्यक्त हुआ है। मैलिनोस्की के धर्म के कार्यात्मक सिद्धान्त की चर्चा इसके पूर्व की इकाई में की जा चुकी है। डर्खिम की तरह अनुष्ठान के बारे में मैलोनस्की की भी आधारभूत समझ यह है कि समुदाय विशेष में सम्पन्न होने वाले अनुष्ठानों की एक सामाजिक भूमिका होती है। वह टेलर के इस तर्क से सहमत नही है कि आदिम मनुष्य द्वारा

प्रकृति के छिपे रहस्यों को तर्क संगत परिणति देने के क्रम में अनुष्ठानों का जन्म हुआ। बोब्रिएंड द्वीप समूह में रहने वाले लोगों का अनुष्ठान तो किसी अनुमान का परिणाम है न ही यह किसी अविकसित बुद्धि का फल है। अपने दैनिक जीवन में बोबिएं डमें रहने वाले लोग चमत्कारपूर्ण तथ्यों और आम समझ या तकनीकी गतिविधियों का अन्तर साफ तौर पर समझते है। हालांकि मैलोन्सकी डर्खिम से असहमत भी है। पहली बात यह है कि वह इस बंटवारे को शाश्वत नहीं मानता जबकि इसका कोई मानव जातीय प्रमाण उपलब्ध नहीं है। दूसरे वह यह मानतां है कि दूसरी धार्मिक प्रथाओं की तरह चमत्कार भी पवित्रता के क्षेत्र में पड़ता है। त्रोब्रिएंड द्वीप समूह में रहने वाले लोगों ने इस चमत्कार पूर्ण प्रथाओं से भी कई विश्वास सीापित किये है। जो काफी हद तक समुदाय के हिस्से के रूप में स्थापित है और यहाँ तक कि उनके पास यूरोपीय दृष्टिकोंण के तहत कोई चर्चा जैसी बीज नहीं है। उनमें चमत्कारपूर्ण विश्वास भी समुदाय के लागों के बीच एक दृढ़ बंधुत्व का सूत्र स्थापित करते है।

मैलोन्सकी का मानना है कि समुदाय के भीतर भावात्मक बंधुत्व स्थापित करना अनुष्ठान का महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य है। सभी व्यक्तियों और समूहों को रोजमर्रा के जीवन में कष्ट, विपदा, डर, अच्छा और बुरा की नैतिक समस्याओं, महामारी, मृत्यु आदि का सामना करना पड़ता है। तनाव और भावात्मक कष्ट के मौकों पर अनुष्ठान व्यक्ति को समूह के साथ जोड़ते हैं और उन्हें एकता और सुरक्षा के बंधन में बाँधते है।

6.6 अनुष्ठानों का महत्व

यहाँ हम एक बार फिर प्रस्तावना में कही गयी बातों को दुहरा रहें है। परम्परागत कृषि समाजों में सामाजिक भेद–भाव अपेक्षाकृत कम होती है और यहाँ धर्म सामाजिक व्यवस्था के तंतुओं में गुँथा होता है। इसी पृष्ठभूमि में हमें भारतीय समाज में अनुष्ठानों के महत्व पर विचार करना चाहिए औद्योगीकरण और शहरीकरण होने के बावजूद भारतीय समाज का अधिकांश हिस्सा अभी भी कृषि समाज से जुड़ा हुआ है और वह उससे जुड़ी परम्पराओं और रीति–रिवाजों का पालन करता है। यहाँ तक की देश के बड़े–बड़े शहरों में रहने वाले अधिकांश लोगों को भी अपनी परम्पराओं और प्रथाओं को छोड़ने के लिए अपने आप से संघर्ष करना पड़ता है। इस प्रकार के समाज में धर्म की अहम भूमिका होती है। अनेक अवसरों पर और विभिन्न कार्यो के लिए अनुष्ठान कराये जाते है। कई बार तो वे व्यक्ति और समुदाय के प्रतिदिन के जीवन में घुलमिल जाते है। भारतीय समाज कई धार्मिक समुदायों का समुच्चय है और इस प्रकार हमारे समाज में अनुष्ठान का बड़ा महत्व है।

इस प्रकार के समाज में अनुष्ठानों का महत्व समझने के लिए डर्खिम और मैलिनोस्की के दृष्टिकोंणों को सामने रखा जा सकता है। सामाजिक बंधन की दृष्टि से अनुष्ठान महत्वपूर्ण होते है। इसके साथ–साथ वे समूह के सदस्यों के बीच भावात्मक एकता भी कायम करते है। भारतीय समाज परम्परागत कृषि समाज से आगे बढ़कर आधुनिक समाज में परिवर्तित हो गया है जिसका आधार प्रजातंत्रीय धर्मरिपेक्ष व्यवस्था है। राज्य के इस धर्मनिरपेक्ष स्वरूप को बरकरार रखने के लिए और विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच एक सामजस्य स्थापित करने के

लिए कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। जब–जब धार्मिक विश्वासों और प्रथाओं का राजनैतिक उपयोग किया जाता है तब–तब संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। धर्म के राजनीतिकरण के कारण जनता धार्मिक दृष्टि से बहुत संवेदनशील हो जाती है। इस प्रकार आधुनिक भारतीय समाज को देखने से लगता है कि अनुष्ठान कृत्य का महत्व न केवल एकीकरण और भावात्मक बंधुत्व के लिए है बल्कि धार्मिक समुदाय विशेष के सदस्यों के लिए यह एक धार्मिक पहचान प्रदान करने का भी कार्य करता है। इस प्रकार की धार्मिक पहचान को उभारने के लिए किये गये अनुष्ठाानिक प्रयत्नों के कारण कभी–कभी आधुनिक भारतीय समाज की धर्म निरपेक्षता खतरे में पड़ जाती है।

इसके बावजूद वास्तविकता यह है कि भारतीय समाज और संस्कृति के अधिकांश विद्वानों का मानना है कि भारतीय समाज की सामूहिक चेतना गहरे रूप में धर्म के साथ जुड़ी हुई है। विभिन्न धार्मिक समूहों और समुदायों की अपनी जीवन शैली और दृष्टि है जो उनके धार्मिक प्रतीक और अनुष्ठान प्रथाओं का परिचायक है। इस स्थिति में अनुष्ठानिक गतिविधियों के रूप में धर्म को व्यक्ति और समूह दोनों के लिए एक नैतिक निर्देश के रूप मं देखा जा सकता है। इस प्रकार के नैतिक निर्देश या नैतिक नियम अप्रत्यक्ष रूप में सामाजिक व्यवस्था के रख–रखाव में सहायता करते है।

6.7 सारांश

टेलर और अन्य विकासवादी विद्वानों ने अनुष्ठानों को चमत्कारों और जीववाद से जोड़ा है। कार्यात्मक दृष्टिकोंण के समर्थक बताते है कि अनुष्ठान की गतिविधि पवित्रता के क्षेत्र में सम्पन्न होती है। संरचनावादियों का मानना है कि आदिम मनुष्य अपनी गतिविधियों को पवित्रता के क्षेत्र में जोड़कर अनुष्ठान को जन्म देता है और यह विश्व के प्रत्येक हिस्से के आम जीवन से जुड़ा हुआ है।

दूसरे, हमने विभिन्न विद्वानों की अनुष्ठान संबंधी मान्यताओं को भी सामने रखने की कोशिश की है। विकासवादियों के अनुसार अनुष्ठान मनुष्य द्वारा अनबुझे रहस्यों को तर्क संगत परिणति देने का आरम्भिक प्रयास था। कार्यात्मक दृष्टि के समर्थक अनुष्ठान के सामाजिक महत्व पर बल देते है। और सामाजिक एकीकरण या भावात्मक बंधुत्व के पक्ष पर बल देते है। संरचनावादियों के अनुसार अनुष्ठान सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था से गृहित प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की व्याख्या है। अन्ततः फ्रायड का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त अनुष्ठान को सामूहिक मनस्ताप की अभिव्यक्ति के रूप में देखता है जो सामूहिक ग्लानि और लज्जा के अनुभव का परिणाम होता है।

6.8 शब्दावली

विपदा : शारीरिक रोग या मानसिक कष्ट या दुख

जीववाद : जड़ और चेतन वस्तु में आत्मा का निवास है।

अनुभव जन्य : अनुभव से प्राप्त ज्ञान

मनस्ताप : यह शब्द विक्षिप्तता से संबंद्ध है जो तंत्रीय व्यवस्था से जुड़ा हुआ रूप में मनस्ताप ग्रस्तता विक्षिप्तता का पर्याय है।

परिणामवादी : ऐसा दर्शन जो किसी वस्तु या विचार के परिणाम पर उसका मूल करता है।

6.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- जेनेप, आरनोल्ड वैन (1909) ''द राइट्स ऑफ पैसेज'' : लंदन राउटलेज
- डर्खिम एमिले (1912) 1954 ''द एलिमेंट्री फार्मस ऑफ द रिलिजियस लाइफ'' : एलेन एंड अनविन
- लीच एडमंड आर. 1961, रीथिंकिंग एंथ्रोपोलाजी लंदन स्कूल ऑफ इकोनामिक्स एंड पालिटिकल सांइस मोनोग्राफ्स ऑफ सोशल एन्थोपोलोजी नं. 22, लंदन एथलों रिचुअल पृ. 520–26
- डेविड एल, सिल्लस (सं) इंटरनेशनल इनसाइक्लोपिडिया ऑफ द सोशल साइसेंज 13 न्यूयार्क : मैकमिलन।

इकाई–7

अनुष्ठान 1 : अफ्रीका का एक केस अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 डेम्बू समाज – एक परिचय

7.2.1 आर्थिक, सामाजिक जीवन एवं भौगोलिक अवस्थिति

7.2.2 मातृ सत्ता एवं आवास

7.2.3 अनुष्ठानों के प्रकार : देम्बू समाज में

7.3 मुकान्दा – खतना का अनुष्ठान

7.4. खतना अनुष्ठान की प्रक्रिया

7.5 कुंग अला अकेले की अवस्था

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त

- जाम्बिया के देम्बू की भौगोलिक अवस्थिति और आर्थिक स्थिति का संक्षिप्त विवरण जान सकेगें।
- देम्बू द्वारा आयोजित मुकांदा या खतना के अनुष्ठान के बारे में समझ सकेगें।
- खतना अनुष्ठान की प्रक्रिया मे मुकान्दा – खतना का अनुष्ठान को आप समझेगे।

7.1 प्रस्तावना

टर्नर ने दक्षिण मध्य अफ्रीका के उत्तर–पश्चिम जाम्बिया में रहने वाली देम्बू जनजाति की सामाजिक संरचना का अध्ययन किया। 1950 के आरंभ में किया गया। उस क्षेत्र फील्ड कार्य की परिणति कुछ महत्वपूर्ण मोनोग्राफों और लेखों में हुई। इस इकाई में हम मुख्य रूप से दि फारेस्ट ऑफ सिंबल्स : आस्पेक्ट्स ऑफ डेम्बू रिचुअल्स नामक पुस्तक पर ध्यान देंगे जो कि देम्बू अनुष्ठान व्यवस्था के विभिन्न पक्षों, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष से संबंद्ध लेखों और दस्तावेजों

का संग्रह है। टर्नर ने ठीक ही इसका नाम (फारेस्ट) जंगल रखा है और इस एक इकाई में जंगल के सभी वृक्षों का निरीक्षण करना संभव नहीं है। हम मुख्य रूप से टर्नर द्वारा एक लड़के के प्रारम्भिक संस्कार 'मुकांदा' या खतना के अनुष्ठान वर्णन विश्लेषण देखेंगे।'मुकांदा' का वर्णन करने से पहले क्यों न हम देम्बू समाज और उनके द्वारा आयोजित अनुष्ठानों से परिचित हो जाये।

7.2 डेम्बू समाज के बारे में

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि देम्बू दक्षिण मध्य अफ्रीका के उत्तर पश्चिम ज़ाबिया में स्थित है (वे स्वयं को कांगों के महान प्रमुख वान्तियानवा के वंशज मानते है।) यूरोप के संपर्क में संपर्क में आने से ज़ाम्बिया के अनेक भागों में जनजातीय धर्म जिन में जनजातीय एकता, सगोत्र संबंध और बड़ों का सम्मान जैसे मूल्यों पर जोर दिया जाता है, ह्रास पर है। अनेक जनजातियों के लोग अब आधुनिक उद्योगों में मिल कर काम करते हुए एक नई अर्थव्यवस्था के सहभागी हो गए है। टर्नर भाग्यशाली था कि उसका शोध ऐसी जगह पर हुआ जहॉ के लोगों में जनजातीय धर्मों का ह्रास अधिक तेजी से शुरू नहीं हुआ था।

7.2.1 आर्थिक जीवन एवं भौगोलिक अवस्थिति

टर्नर ने विनिलुगा क्षेत्र में गहन अध्ययन किया। जहॉ 18000 देम्बू थे। ये लोग एक गॉव में, लगभग प्रत्येक 7000 वर्ग मील पर दर्जन भर झोपड़ियों के रूप में बिखरे हुए थे। यह इलाका मुख्यतः जंगल था जिसमें अनेक नदी थे। देम्बू की छोटी सी अर्थव्यवस्था है अर्थात् वे केवल अपनी आवश्यकताओं के लिए अन्न पैदा करते है। मंडुआ जिससे बीयर बनती है और मदई के साथ 'कसावा' वहॉ की मुख्य सब्जी है जिसे महिलाएं उगाती हैं पुरूष शिकार करते है। शिकार केवल पुरूषों का कार्य है और उसके साथ अनेक अनुष्ठानों से जुड़ी हुई है। संक्षेप में देम्बू समाज के संरचनात्मक सिद्धान्त को देखे जिसके आधार पर देम्बू समाज की व्यवस्था मातृसत्तात्मक वंश और पुरूष आवास के आधार पर हुई है।

7.2.2 मातृ सत्ता और आवास

देम्बू की गिनती मातृ सत्तात्मक वंशों में होती है अर्थात् नवजात शिशु अपनी मातृ कुल का माना जाता है। मातृ सत्तात्मक वंशों में देखा गया है कि अधिकांश तथा मातृक आवास भी मिलता है किंतु देम्बू की संस्कृति में पुरूष आवा ही स्वीकृत है, यानि लड़का अपनी पत्नी को अपने साथ ले जाता है। इस मातृ सत्तात्मक वंश और पुरूष आवास के घालमेल से एक प्रकार की उलझन पैदा हो गई है।

चूँकि यहाँ व्यक्ति अपने मातृ कुल का होता है अतः वह उस कुल की प्राथमिक या गुप्त संपत्ति का सहभागी होता है। साथ ही उसे यह भी अधिकार है कि वह अपनी पत्नी को उसके कुल से अलग अपने पैतृक आवास पर भी ले जा सकता है और औरते, जिन पर ग्रामीण समाज की अविच्छिन्ता निर्भर है, अपने गॉव से पति के गॉव में बसने जाती है। तलाक और विधवा विवाह खूब प्रचलित है। इसलिए और लगातार एक गॉव से दूसरे गॉव जाती रहती

है। मर्द अपने बेटे को साथ रखने का प्रयास करते है और जैसा कि हम आगे देखेंगे कि बाप–बेटे के संबंधों के अनेक अनुष्ठान है। इससे मातृ पक्ष और पितृ पक्ष के बीच तनाव होता है जो कि इस मातृ सत्तात्मक समाज में शक्तिशाली पुरूष पक्ष का होता हैं देम्बू समाज में व्यक्ति, परिवार और समाज को स्थानीय गतिशीलता सामान्य बात है। गॉव स्थिर नही है, भारतीय समाज की तरह सहिष्णु समूह की भॉति नहीं। उनके समूह लगातार बनते बिगड़ते रहते है।

7.2.3 अनुष्ठानों के प्रकार : देम्बू समाज में

विक्टर टर्नर ने मुरनीलुंगा में 21–22 वर्ष तक शोध कार्य किया। इस बीच वह कई देम्बू अनुष्ठानों में गया उन्हें देखकर उनके विषय में जानकारियॉ प्राप्त की। जैसा कि वह कहता है ''इन शिकारियों की अपेक्षाकृत स्थिर और नीरस अर्थव्यवस्था और घरेलू जीवन और अविकसित खेती व्यवस्था और धार्मिक जीवन की मनोहर प्रतीक्षात्मकता को देखना एक रोमांचकारी और ज्ञानवर्धक अनुभव था'' टर्नर के अनुसार देम्बू अनुष्ठान दो प्रकार के होते है; 1) जीवन के महत्वपूर्ण क्षणों के अनुष्ठान; 2) पीड़ा से संबंद्ध अनुष्ठान।

1) जीवन के महत्वपूर्ण क्षणों के अनुष्ठान : इनका संबंध ''किसी व्यक्ति के शारीरिक और सामाजिक विकास जैसे जन्म वयः संधि (यौवन), मृत्यु से है।'' हर प्रकार के समाज में अनेक अनुष्ठान होते है जो कि जीवन और समाज की एक स्थिति से दूसरी में प्रवेश की पहचान है। महत्वपूर्ण अनुष्ठानों का संबंध मात्र उस व्यक्ति विशेष से नहीं है। वह विभिन्न सामाजिक संबंधों में परिवर्तन का भी द्योतक है। उदाहरण के लिये भारतीय समाज में विवाह व्यक्ति की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन का द्योतक है। लड़का/लड़की किसी के पुत्र या पुत्री मात्र नहीं रहते बल्कि पति और पत्नी हो जाते हैं इन महत्वपूर्ण अनुष्ठानों के परिणाम स्वरूप माता–पिता, भाई–बहन, मित्र के साथ संबंधों में एक सहज परिवर्तन आ जाता है। निश्चित बचपन और यौवन के दिन बीत गए, अब व्यक्ति गृहस्थी हो हो जाता है। देम्बू समाज के महत्वपूर्ण अनुष्ठानों में लड़के और लड़की को दीक्षित करने का समारोह भी होता है। लिंग के अनुसार इन अनुष्ठानों का प्रकार और प्रयोजन अलग होता है लड़कों का खतना किंतु उसी तरह लड़की की भगशिश्न को नहीं काटा जाता। लड़की को दीक्षित करने के समारोह को कांगा कहा जाता है जिस में लड़की को कम्बल ओढ़कर एक वृक्ष के नीचे पूरे दिन निश्चल लेटना पड़ता है। लड़कों का खतना सामूहिक रूप से होता है जब कि लड़कियॉ एक–एक क के दीक्षित होती है। लड़को को यौवन से पूर्व दीक्षित किया जाता है, जबकि लड़कियों को यौवन के आरंभ में। लड़कों को दीक्षित करने का मुख्य उद्देश्य उनमें जनजातीय मूल्यों शिकार की कला और यौन निर्देशों का संस्कार देना है। जबकि लड़कियों की दीक्षा उनके विवाह और मातृत्व की तैयारी का प्रतीक है। दीक्षा लड़के के शिकार और लड़की को प्रजनन के योग्य बनाता है। पुरूषों के शिकार की भूमिका अत्यधिक आनुष्ठानिक है जबकि औरतों के लिए खेती पर उतना जोर नहीं दिया जाता। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रारंभिक दीक्षा में पुरूषों में उत्पादन और औरतों में प्रजनन की प्रक्रिया पर जोर दिया जाता है।

फिर भी, इन दोनों अनुष्ठानों में एक बात सामान्य है कि दोनों में अपने से बड़ों का सम्मान दिया जाता है।

उपेक्षित या अप्रसन्न किया गया है। किसी आत्मा या छाया द्वारा पकड़ लिये जाने पर कोई विपदाग्रस्त व्यक्ति एक बड़े आनुष्ठानिक जमघट का केनद्र बन जाता है। ठीक हो जाने पर वह व्यक्ति कोई छोटा सा 'डॉक्टर' बन जाता है और बाद में उसी पर विपदाग्रस्तों किसी अन्य व्यक्ति को ठीक होने में सहायता करता हैं जैसा कि टर्नर ने कहा है कि ''विपदाओं (संकटों) के माध्यम से व्यक्ति धार्मिक ख्याति प्राप्त करता है।'' देम्बू विश्वासों के आधार पवर तीन प्रकार की विपदाए (संकट) स्पष्ट की गई है। वे निम्न प्रकार है :

1) किसी शिकारी की आत्मा शिकार में समस्या उत्पन्न कर सकती है।

2) किसी औरत की आत्मा किसी संबंधी औरत के प्रजनन में समस्या उत्पन्न कर सकती है।

3) स्त्री–पुरूष दोनों की आत्मा स्वास्थ संबंधी समस्या जैसे दर्द कपकपी वजन में कमी आदि जैसी समस्याएं उत्पन्न कर सकती है।

विपदाओं से निपटने के हेतु इनके अनुरूप निम्नलिखित अनुष्ठान किये जाते है–

1)शिकारियों की उपासना, 2) गर्भाधान की उपासना और 3) आरोग्य की उपासना,

1) शिकारियों की उपासना : जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि देम्बू जनजातियों में शिकार को अत्यधिक आनुष्ठानिक महत्व दिया गया है। यह मात्र खेल या आर्थिक गतिविधि से कही अधिक महत्वपूर्ण है।

यह माना जाता है कि अदृष्य शक्ति किसी देम्बू युवक से कहती है कि उसे एक महान शिकारी बनना है इसी कारण उसे सपने में उसके संबंधी शिकारियों की आत्माएं दिखती है। इन सपनों के बाद शिकार में कोई दुर्घटना होती है, दूसरे शब्दों में विपदा आती है। विपदाग्रस्त शिकारी अनुष्ठान करके शिकारियों की उपासना में प्रवेश करता है। जैसे–जैसे अनुष्ठान की क्रिया बढ़ती जाती है, वैसे–वैसे यह माना जाता है कि उसके शिकार करने में उसका दुर्भाग्य कम होता जाता है और धीरे–धीरे वह शिकार की कला में सिद्धहस्त हो जाता है।

2) गर्भाधान की उपासना : प्रजनन की अनियमितता से संबंधित कई अनुष्ठानों में टर्नर ने भाग लिया। गर्भस्राव और प्रजनन के कठिन मामलों में कई बार टर्नर की पत्नी को सहायता करने का अनुरोध किया जाता था, टर्नर दंपत्ति ने पाया कि अनेक महिलाएं एनीमिया (खून की कमी) से पीड़ित थी और उनका आहार भी उन प्रोटीनों से रहित था जो कि अच्छे स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। फिर भी प्रजनन की इन अनियमितताओं के प्रति देम्बू जनजाति का यह रवैया है कि किसी स्त्री संबंधी की आत्मा कब्र से निकल कर अपने उस संबंधी स्त्री के शरीर में तब तक वास करती है जब तक अनुष्ठानों द्वारा उन्हें प्रसन्न नहीं कर दिया जाता। अधिकांशतः यह आत्मा उस स्त्री की

नानी या मॉ की आत्मा होती है जिसे उस स्त्री ने भुला दिया है। प्रजनन की विभिन्न अनियमितताओं के लिये अलग–अलग अनुष्ठान है और प्रत्येक अनुष्ठान की तीन विशिष्ट अवस्थाएं होती है। पहला उपचार और नृत्य (नाच) इसके बाद एकान्त की अवस्था होती है। जिसमें खाने–पीने की कुछ चीजों पर प्रतिबंध होता है और अंततः कुछ और उपचार और अनुष्ठानिक नृत्य जो कि विपदाग्रस्त लोगों को फिर से सामान्य जीवन के लिये तैयार करता है। प्रत्येक अनुष्ठान के लिये दवाओं का एक विशेष मिश्रण होता है। विशेष ताल और नृत्य होता है एक अलग पवित्र स्थान और अनुष्ठान के विशेष उपहार होते है। जब देम्बू लोग पीने और नाचने के लिये एकत्रित होते है। प्रत्येक अनुष्ठान और विशेष कर उसकी अंतिम अवस्था सब के लिये उत्सव मनाने का अवसर होता है।

3) **आरोग्य की उपासना** : टर्नर के अनुसार ''चिरबा'' और ''कलेवा'' दो ही डेसी देम्बू आरोग्य उपासना है। अन्य उपासनाएं जिन पर टर्नर का ध्यान गया वे क यांगू, टुकुकू और मासुदों अनुष्ठान अन्य जनजातियों से लिये है। इन अनुष्ठानों में उपचार करने वाला रोगी के साथ–साथ स्वयं पर भी दवाओं का प्रयोग करता है जिसके बाद दोनों को कंपकपी के दौरे पड़ते है। टूकुकू और मांसूदा अनुष्ठान विनिलुंगा में बहुत अधिक लोकप्रिय हो गए है और इन्हें से पीड़ित मरीजों के लिये किया जाता है और प्रचलित विश्वास है कि यह रोग योरोपीय और अन्य जनजातियों की प्रेतात्मा के कारण होता है। अतः उपचार के तौर पर योरोपीय खाना खिलाया जाता है, योरोपीय कपड़े पहने जाते है और योरोपीय गानों और नृत्यों की नकल की जाती है।

अतः हम पाते है कि देम्बू जाति के लिये अनुष्ठान जीवन के सभी पहलुओं वैयक्ति जीवन चक्र से लेकर बीमार और प्रजनन की क्रियाओं में पाया जाता है।

7.3 मुकांदा खतना का अनुष्ठान

अनुष्ठान का अध्ययन करते हुए टर्नन क्या मानदंड ध्यान में रखता है। वह तीन मानदंड मानता है। पहला है बाहरी दिखावा। यह पूर्णतया विवरणात्मक मानदंड है। दूसरा है अर्थनिरूपण यानि भाग लेने वालों द्वारा बनाये गये बाहरी दिखावे की व्याख्या और तीसरा मानदंड है नृवैज्ञानिकों द्वारा व्याख्या जो कि बहुधा भाग लेने वालों की व्याख्या से भिन्न होती है। टर्नर का मानना है कि नृवैज्ञानिकों की स्थिति अनोखी है। वह उस समाज के बारे में ऐसी बाते जान सकता है जो उसके सदस्य भी अक्सर जान न पाते हो।

इन तीन मानदंडों की झलक टर्नर द्वारा किये गये मुकंडा अनुष्ठान के अध्ययन में साफ दिखाई देती है। वह मुकांदा को अनेक प्रसंगों की श्रृंखला के रूप में प्रस्तुत करता है, जो बाहरी दिखावे पर आधारित है, साथ–साथ भाग लेने वालों की टिपण्णियॉ और अर्थनिरूपण भी भी दिया गया है। टर्नर के एक देम्बू सूचक मुचोला ने मुकाद अनुष्ठान के पीछे–पीछे मिथक के बारे में उसे बताया। कहानी यह है कि एक बार एक मॉ ने अपने बच्चे को घास में खेलने के लिये छोड़ा। नोकीले घास से बच्चे के लिंग की खलड़ी कट गई। यह देखकर गॉव के

बड़ों ने खलड़ी पूरी तरह कॉट दी। घाव भर गया और सारे पुरूषों ने यह तरीका अपनाया। इस प्रकार मुकांदा स्वास्थ्य से जुड़ी प्रक्रिया है। खलड़ी के नीचे मैल जम जाता है। इसलिए पुरूषों को तब तक अपवित्र माना जाता है जब तक उनका खतना न हो। खतना के बाद पुरूष पवित्र बन जाता है क्योंकि जो छिपा और मैला था वह दृष्य और स्वच्छ बन जाता हैं मुकांदा का सामाजिक महत्व यह है कि लड़के को मॉ से अलग कर पिता के निकट लाया जाता है।

जैसा कि आप पढ़ चुके है, मुकांदा का सामुहिक स्वरूप है, अर्थात् एक साथ कई लड़कों का खतना किया जाता है। इस समारोह में भाग लेने वाली सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक इकाई पड़ोसी ग्रामों की है जिनकी संख्या दो से लेकर बारह तक हो सकती है। जैसा कि आप पढ़ चुके है। ग्रामों का इतिहास बहुत छोटा होता है। वे अक्सर टूट कर बिखर जाते है, अतः पड़ोस अपने आप में बहुत ही अस्थाई इकाई है। प्रत्येक पड़ोस में कम से कम 2 ग्राम अपने आप को श्रेष्ठ मानते है। मुकांदा समारोह का आयोजन कर गॉव का सरपंच अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर सकता है। पड़ोस में आपसी प्रतिस्पर्धा और चालों को गौर से देखकर टर्नर इस नतीजे पर पहुॅचा है कि मुकांदा एक अनुष्ठान मात्र न होकर राजनैतिक शक्ति का प्रतीक है। इन प्रतिस्पर्धाओं की बारीकियों पर हम ध्यान नहीं देंगे, लेकिन हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि इनके पीछे एक राजनीतिक पहलू है। अब चलिये इस अनुष्ठान के बारे में पढ़े।

मुकांदा अनुष्ठान के तीन प्रमुख भाग होते है :

1) 'क्विंग–इजा' यानि प्रवेश का चरण

2) 'मुग–उला' यानि एकांत का चरण और

3) 'क्विदिशा' यानि आम जीवन पुनः आरंभ करने की विधियॉ

मुकांदा का आरंभ इस प्रकार होता है कि सबसे विशिष्ट खतना करने वाले को पड़ोस के बुजुर्ग आमंत्रण देते है। नौसिखियों में से सबसे बड़े और हट्टे–कट्टे लड़के को उनके पास भेजा जाता है। लड़का जिसे काम्बोजी कहते है, खतना करने वाले को गाली देता है। ''बुड्ढे तुम आलसी हो गये हो और तुम्हार चाकू भोथरा। अब तुम किसी काम के नहीं हो। मुकांदा में तुम्हें क्या बुलाये, भला ?''

बहुत क्रोधित होने का नाटक करते हुए खतना करने वाला काम्बोजी को आदेश देता है कि वह पड़ोस के सरपंचों को मुकांदा की तैयारियॉ आरंभ करने को कहे। 'स्थापक' जिसका काम है प्रवेश के लिये खाने–पीने का आयोजन करना, अपने काम में लग जाता है। इस प्रकार औपचारिक रूप से मुकांदा का आरंभ होता है। अब से नौसिखियों को खाने से संबंधित कुछ नियमों का पालन करना होगा।

अनुष्ठानों के आरंभ से पहले खाने का सामान और शराब मेजबान गॉव में जमा किया जाता है और नौसिखियों और उनके रिश्तेदारों के रहने के लिये एक मैदान तैयार किया जाता है। खतना करने के एक दिन पहले खतना करने वाले कुछ पेड़ों के पत्तों और छाल से

'कू–कोलिशा' दवा बनाते है। कू–कोलिशा का प्रयोग मुकांदा के अनेक विधियों में किया जाता है। इसका सबसे महत्वपूर्ण तत्व है 'चिकोली' पेड़ की छाल। धार्मिक दृष्टि से यह पेड़ अत्यंत महत्वपूर्ण है : यह लिंग और शौर्य, शिकार में निपुणता और सहनशक्ति जैसे मर्दाना गुणों का प्रतीक माना जाता है। खतना करने वाले यह दवा बनाते हुए गाते और नाचते है।

7.4 खतना अनुष्ठान की प्रक्रिया

1 यह प्रक्रिया लगभग हमेशा तब की जाती है जब बच्चा आठ दिन का हो जाता है। इस्लामी संस्कृति में, खतने की रस्म को खितान कहा जाता है । इस्लामी दुनिया के कुछ हिस्सों में, यह प्रक्रिया धार्मिक समारोह के हिस्से के रूप में की जाती है। अन्य हिस्सों में, यह अस्पताल की सेटिंग में किया जाता है।

2 शिशुओं में खतना एक बहुत ही आम प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया से कई लाभ मिलते हैं, जिसमें लिंग को साफ करना आसान बनाना और आपके बच्चे में मूत्र मार्ग के संक्रमण जैसी कुछ स्थितियों के विकसित होने का जोखिम कम करना शामिल है।

3 लेजर खतना रू उन्नत लेजर तकनीक का उपयोग करते हुए, यह विधि सटीक कट प्रदान करते हुए रक्तस्राव और सूजन को कम करने में मदद करती है। चेन्नई खतना क्लिनिक कम आक्रामक प्रक्रिया चाहने वालों के लिए यह आधुनिक विकल्प प्रदान करता है।

4 ऑपरेशन के बाद कुछ दिनों तक लिंग में दर्द और सूजन बनी रहेगी। इस क्षेत्र को ठीक करने के लिए कुछ दिनों तक मलहम लगाने की सलाह दी जा सकती है। आपके बच्चे को कम से कम 3 दिनों तक नियमित दर्द निवारक की भी आवश्यकता होगी।

5 मुसलमानों और यहूदियों में खतना या सुन्नत एक धर्मिक संस्कार माना जाता है. इन धर्मों में लड़का पैदा होने के कुछ सालों बाद उसके लिंग की आगे की चमड़ी निकाल दी जाती है. लिंग की ऊपरी खाल को हटा देना ही खतना (ब्पतबनउबपेपवद) कहलाता है।

6 नए नियम में खतना को अनिवार्य नहीं बताया गया है । इसके बजाय, मसीहियों से आग्रह किया जाता है कि वे यीशु और क्रूस पर उनके बलिदान पर भरोसा करके 'हृदय का खतना' करवाएँ। एक यहूदी के रूप में, यीशु का स्वयं खतना हुआ था

7.5 कुंग–उला – अकेले का चरण

एकांत का चरण आम तौर पर तीन से चार महीनों का होता है। जिस मुकांदा के टर्नन ने देखा उसमें यह सिर्फ दो महीने चला। इस चरण में सबसे पहले नौसिखियों का निवास बनाया जाता है। यह घास और लकड़ियों का कच्चा मकान होता है। लड़के यहाँ और सोते है और रिश्तेदारी की अपेक्षा मित्रता के आधार पर गुट बनाते है। उनकी देखभाल का काम प्रशिक्षक द्वारा संभाला जाता है जो खाने पीने के नियमों के पालन की ओर ध्यान देता है। यहाँ के रहस्य कभी बाहर बताये नहीं जाते थे, पर आज कल इस नियम का उल्लंघन किया जा रहा है। जब तक उनके घाव भर न जाये नौसिखियें और उनके माँ–बाप नमक नहीं खा

सकते है। माँ–बा पके लिये संभोग भी मना है। नमक, खून, वीर्य और संभोग के एक दूसरे से जोड़ा जाता है। माना जाता है कि नमक खाने या संभोग करने से नौसिखियो के घाव भरने में दिक्कत होती है अनुशासन और बड़ों का सम्मान जैसे मूल्य नौसिखियों को सिखायें जाते है। टर्नर के अनुसार ''उन्हें सुशील बनकर रहना था, कम बोलना था और छोटे–मोटे काम चुस्ती से करने थे। निवास के अधिकारियों और बुजुर्गों द्वारा उन्हें मौखिक शिक्षा दी जाती है, जैसे झूठ न बोलना, चोरी न करना, वृद्धों की निन्दा न करना शौर्य और अतिथि–सत्कार। जब वे शारीरिक और मनोवैज्ञानिक रूप से पूरी तरह ठीक हो जाते है तब 'चिकूला' विधियों का आरंभ होता है। 'मकीशी' मुकुटधारी जिन्हें मरे हुए सरपंचों की आत्माओं का प्रतीक माना जाता है, नृत्य करते है। इस नृत्य के माध्यम से बताया जाता है कि लड़के अब स्वस्थ हुए है। उनके माता–पिताओं को नमक दिया जाता हैं अब वे अपने शारीरिक संबंध फिर से आरंभ कर सकते है। 'चिकूला' विधियों के समाप्त होने के बाद लड़कों को जनजाति के मिथक पहेलियों, कहावतें, शिकार संबंधित नृत्य और गाने सिखाये जाते हैं। वे 'कू–टोंबोका' युद्ध नृत्य करना सीखते है, जिसे मुकांदा के अंत में हर लड़के को कर के दिखाना पड़ता है।

7.6 सारांश

इस इकाई में अवस्थिति आर्थिक, सामजिक की देम्बू जनजाति के जीवन में अनुष्ठानों के स्थान के बारे में पढ़ा। सबसे पहले इस जनजाति के भौगोलिक और सामाजिक परिवेश के बारे में जानकारी दी गई। आपने देखा कि किस प्रकार मातृसत्ता और उनके परिणामस्वरूप देम्बू गॉव अत्यंत अस्थायी होते है। यह है जीवन के मुख्य घटनाओं से संबंधित अनुष्ठान और विपदा संबंधित अनुष्ठान और इनसे जुड़ी हुई उपासनाएँ। मुकांदा अनुष्ठान के विभिन्न चरणों के बारे में आपने विस्तार से पढ़ा। आपने देखा कि किस प्रकार खतना के अनुष्ठान के माध्यम से लड़के को मॉ से अलग किया जाता है और उसे पिता के निकट लाकर पुरूषों के नैतिक समूह का सदस्य बनाया जाता है। आपने देखा कि किस प्रकार टर्नर ने देम्बू समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक मात्र नहीं, बल्कि माता–पिता और संतान के आपसी संबंधों को परिभाषित करने वाले प्रसंग सामाजिक एकाग्रता लाने वाले माध्यम और प्रतिष्ठा कमाने के साधन के रूप में आपने देखा। संक्षेप में मुकांदा अनुष्ठान निर्धारित व्यवहार और प्रतीक मात्र नहीं है। टर्नर इसे सामाजिक परिवेश के एक प्रतिबिंब के रूप में देखता है।

7.7 शब्दावली

पड़ोस : एक साथ रहने वाले

व्याख्याः अनुष्ठान का आलोचनात्मक वर्णन

एकांतः किसी अलग–अलग या व्यक्तिगत स्थान पर ले जाना।

दीक्षाः किसी व्यक्ति विशेष को बंधुत्व और समाज में स्वीकृति देना परिचित कराना है।

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- इवेन, एम, जुइस, 1987 *रिच्युअल इन दि इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन मीरखीया इलाइडे* द्वारा संपादित, न्यूयार्क, मैकमिलन।
- लीय एडमन्उड आर, 1961 *रोथकिंग एन्थ्रोपोलापी :* लंदन, एथलौने
- 1978 रिच्युअल इन दि इंटरनेशन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज : डेविड द्वारा संपादित, एल सिलक, बात्युक 13, न्यूयार्क
- यू0जी0एस0वाई–05, समाज और धर्म इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

इकाई–8

अनुष्ठान 2 : दक्षिण पूर्व एशिया का एक केस अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 प्रारम्भिक परिचय

8.2.1 जावा के बारे में

8.2.2 मोदजोकूटो का समाज

8.2.3 जावा के मुख्य सांस्कृतिक प्रकार

8.3 स्लामेतान – जावाई धर्म का एक मुख्य अनुष्ठान

8.3.1 स्लामेतान की प्रक्रिया एवं पद्धति

8.3.2 स्लामेतान की व्याख्या

8.4 स्लामेतान उदाहरण हेतु

8.4.1 टिंगकेबान उदाहरण के रूप में

8.4.2 विवाह – केपानगिहान

8.5 सारांश

8.6 शब्दावली

8.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त

- जावा के समाज और संस्कृति की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- स्लामेतान की प्रक्रिया एवं पद्धति को आप जानेगे।
- उदाहरणों की सहायता से जावा के प्रमुख अनुष्ठान ''स्लामेतान'' के विषय में जान सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

धर्म का विस्तृत अध्ययन क्लिफोर्ड गिर्ट्ज ने अपनी पुस्तक 'दि रिलिजन ऑफ जावा''

में दिया है। यह (प्रबंध) पुस्तक (1960) समकालीन जावाई जीवन के विभिन्न पक्षों पर लिखी गई अनेक पुस्तकों में सर्वप्रथम पुस्तक है। गिट्र्ज से पूर्व मध्य जावा के एक शहर जिसे उन्होंने मोदजोकूटो नाम दिया है में खोज की। (समाजशास्त्रियों में यह परम्परा रही है कि गोपनीयता के ख्याल से अनुसंधान (खोज) की जगह और लोगों के काल्पनिक नाम दिये जाते हैं। इस इकाई में गिट्र्ज की पुस्तक मात्र जावा के धार्मिक अनुष्ठानों के संबंध में नही बल्कि संपूर्ण धर्म के संबंध में है, किन्तु इस इकाई के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हम अनुष्ठानों के विषय में विवरण और विश्लेषण पर विस्तार पूर्वक व्याख्या की गई है।

8.2 प्रारम्भिक परिचय

प्रागितिहासिक काल से जावा में मानव का आवास है। वस्तुतः 1891 में यहां आदिम मानव (''पिथेकैन्थ्रोपस इनेक्टस'' या ''जावा मानव'') के अवशेष पाये गये। आइये इस प्राचीन सभ्यता का संक्षिप्त पुनरावलोकन करें।

8.2.1 जावा के बारे में

जावा द्वीप इंडोनेशिया राष्ट्र का एक भाग है। इसे इंडेनेशिया का सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक केन्द्र माना जाता है। दरअसल इंडोनेशिया की राजधानी जकार्ता, जावा का सबसे बड़ा शहर है। पांचवी शताब्दी में हिन्दू जाति के लोग जावा के पूर्वी और मध्य भाग में जा कर बस गए।

हिन्दू जावाई राज्य माजापाहित जावाई इतिहास में स्वर्ण युग का द्योतक है। 13वीं शताब्दी में इस्लाम से संपर्क हुआ और मुस्लिम राज्य मातरम की स्थापना हुई। समकालीन जावाई सभ्यता में हिन्दुत्व और इस्लाम दोनों के वंश है। 1596 में डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी के रूप में उच्च व्यापारी जावा आए और उन्होंने जावाई साम्राज्य के बीच खुदे चिन्ह भी समाप्त कर दिए। 1798 में कम्पनी को समाप्त कर दिया गया और तब से 1949 तक जावा डच शासन के अधीन रहा। फिर इंडोनेशिया स्वतंत्र राष्ट्र बन गया 1950 में सुकातों के नेतृत्व में यह एक गणराज्य बना।

8.2.2 मोदजोकूटो का समाज

मोदजोकूटो, आस–पास के 18 गॉवों का एक व्यापारिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक केन्द्र है। यहॉ की जनसंख्या 20,000 के लगभग थी, जिसमें अधिकांश जावाई लोग थे, साथ में छिटपुट चीनी, अरबी औश्र भारतीय मूल के लोग भी थे। यहां धान की खेती अधिक होने से मोदजोकूटों की अर्थव्यवस्था खेती और व्यापार पर निर्भर थी। जावाई व्यापार का केन्द्र एक बाजार था जहां सैकड़ों जावाई औरत, मर्द अपनी आजीविका कमाने के लिए सूत कपास से लेकर मछली दवाई तक तरह–तरह के समान खरीदते–बेचते थे। गियर्टस के शब्दों में ''मोदजोकूटों जावाइयों, चाहे ग्राहक हो या विक्रेता सबके व्यावसायिक जीवन का आदर्श यहीं बाजार है, आर्थिक व्यवहार में हर संभव और उचित धारणाओं (विचारों) का श्रोत है।'' खेती और व्यापार के अलावा कार्यालयों में काम करना यहां जीविका का तीसरा सबसे बड़ा साधन

था। ऐसे लोगों में शिक्षक और सरकारी कार्यालयों में काम करने वाले लोग थे जो मोदजोकूटों के बुद्धिजीवी और समाज के विशिष्ट वर्ग के लोग थे।

8.2.3 जावा की मुख्य सांस्कृतियां

जावा में तीन प्रकार की सांस्कृतिया है :

1) ''एवेनगन'' परम्परा – गॉवों से जुड़ी है। जावाई गॉवों के लोग जडात्मवाद में विश्वास करते थे। बाद में हिन्दुओं और मुसलमानों के आ जाने से जडात्मवाद, हिन्दुत्व और इस्लाम तीनों का समन्वय हुआ। गिट्र्ज इसे ..... इस द्वीप की सच्ची लोकपरम्श्रज्ञद्व सभ्यता का मूलाधार ..... मानते है।

2) ''सांत्री परम्परा'' बाजार से जुड़ी है। सांत्री परम्परा इस्लाम के शुद्धतावादी दृष्टिकोण से संबंद्ध है। इसमें इस्लाम के अनुष्ठानों जैसे दैनिक नमाज, रोजा, मक्का में हज आदि का नियमित पालन किया जाता है। इस परम्परा में सामाजिक खैराती और राजनीतिक इस्लामिक संगठन का महत्वपूर्ण स्थान है।

3) ''प्रिजाजी'' परम्परा का संबंध बुद्धिजीवियों से है ये बुद्धिजीवी वस्तुतः उस अभिजात वर्ग के वंशज है जिनकी जड़े उपनिवेश से पूर्व हिन्दू जावाई दरबारियें में थी। अतः प्रिजाजी परम्परा का झुकाव हिन्दुत्व और बौद्ध तत्वों की ओर है। विकसित नृत्य, नाटक, कविता और रहस्यवाद आदि इसकी पहचान है। किन्तु उपनिवेशवाद और पाश्चात्य प्रभाव के कारण यह वर्ग धर्मनिर्पेक्ष पाश्चात्य और पांचपविरोधी हो गया है। फिर भी अभिजात्य प्रिजाजी जीवन पद्धति समस्त समाज के लिये आदर्श बनी संक्षेप में अबेनगन परम्परा मुख्य रूप से कृषक वर्ग से संबंद्ध है जो कि जावाई समन्वय पर बल देना है।

8.3 स्लामेतान जावाई धर्म का एक मुख्य अनुष्ठान

स्लामेतान या सह–भोज संपूर्ण जावाई धर्म व्यवस्था का एक प्रमुख अंग है। जैसा कि गिट्र्ज ने संकेत दिया है कि सह–भोज विश्व भर के धर्मों में एक आम अनुष्ठान है। गियर्ट्स के शब्दों स्लामेतान ''इसमें भाग लेने वालों के लिये आध्यात्मिक और सामाजिक एकता का प्रतीक है। दोस्त, पड़ोसी, संबंधी, संबद्ध प्रेतात्माएं दिवंगत पूर्वज प्राचीन देवी देवताएं सभी इस सहभोज के भागीदार होकर एक विशेष सामाजिक वर्ग में बंधकर एक दूसरे के सहायक और सहभागी होते है।''

8.3.1 स्लामेतान की प्रक्रिया एवं पद्धति

स्लामेतान हमेशा शाम को सूर्यास्त के पश्चात् संध्यावंदना के बाद आरम्भ होते है। इसके लिये कोई शुभ दिन चुन लिया जाता है। दिन के समय घर की औरते खाना बनाती है, कभी–कभी रिश्तेदार औरतों से भी मदद ले लेती है। आयोजन में केवल पुरूष ही भाग लेते है, औरते रसोई में ही रहती है। आमंत्रित पुरूष नजदीक के पड़ोसी होते है। मेजबान का इन

सत्कार आयोजन से 5–10 मिनट पहले उन्हें बुलाने जाता है। वो कुछ भी दूर रहे हो, उसे छोड़कर मेजबान के घर जाते है। हॉ, अनूभन लोगों को यह मालूम होता है कि स्लामेतान का आयोजन होने वाला है और वे न्योते के लिए तैयार रहते है। मेजबान के घर मेहमान पहले से रखे हुए भोजन के चारों ओर वृत्ताकार जमीन पर बैठते है। मेजबान एक अत्यंत औपचारिक भाषण के साथ आयोजन का शुभारंभ करता है। वह पड़ोसियों की उपस्थिति के लिये कृतज्ञाता प्रकट करता है और क्षमता करता है कि अनुष्ठान का लाभ सभी को प्राप्त हो। फिर वह अनुष्ठान का कारण बताता है । फिर वह अनुष्ठान के सामान्य कारण बताता है कि उसे उसके परिवार और उपस्थित मेहमानों को ''सलामन'' की अवस्था प्राप्त हो। अधिक शारीरिक और मानसिक शांति और संतुलन की अवस्था प्राप्त हो। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये गॉव की आत्माओं का गुहार करना है। अंत में वह भाषण की खामियों और भोजन की त्रुटियों के लिये क्षमा प्रार्थना करता है। इस औपचारिक भाषण को ''अजब'' कहा जाता है।

8.3.2 स्लामेतान की व्याख्या

जावाई लोग स्लामेतान क्यों मनाते है। एक राजमिश्री ने गिट्र्ज को बताया कि ''स्लामेतान में कोई भी व्यक्ति दूसरे से भिन्न नहीं होता है, इसलिये वे अलग होना नहीं चाहते और स्लामेतान आत्माओं से लोगों की रक्षा करता है, पहले बनाए गये स्लामत अवस्था की इच्छा को जावाई लोग गाक आना अपा अपा कहते हैं जिसका अर्थ है किसी को कुछ नहीं होगा। स्लामेतान के भोजन की खुशबू आत्माओं का भोजन माना जाता हैं जिससे ये आत्माएं शान्त रहें और किसी को परेशान न करें। यह ध्यान देने की बात है कि आत्माओं को व्यक्ति और समाज की गतिविधियों में बाधक और परेशान न करें। यह ध्यान देने की बात है कि आत्माओं को व्यक्ति और समाज की गतिविधियों में बाधक और परेशान करने वाला माना गया है। गियर्ट्स के शब्दों में स्लामेतान ..... सामान्य सांस्कृतिक व्यवस्था को पुर्नस्थापित और सुदृढ़ बनाने और अव्यवस्था को दूर रख्ने का प्रतीक है। स्लामतेन, पारंपारिक जावाई कृषक संस्कृति के मूल्यों को उभार कर प्रत्यक्ष करता है। व्यक्तिगत इच्छाओं का परस्पर सामंजस्य कैसे होता है यह इस बात से स्पष्ट होता है कि न्योता मिलते ही लोग हाथ का काम छोड़ कर पड़ोसी के ''स्लामेतान'' में चले जाते है। आत्म संयम और वाह्य आचारों पर नियंत्रण के उदाहरण मेहमान और मेजबान के बीच औपचारिक संबंध में देखे जा सकते है और जैसा कि गिट्र्ज मानते है कि जावाई आम जीवन में स्लामेतान तभी आयोजित किया जाता है जब उपर्युक्त मूल्यों की सबसे अधिक आवश्यकता महसूस की जाती है।

8.4 स्लामेतान उदाहरण हेतु

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि ''स्लामेतान'' किसी भी महत्वपूर्ण अवसर पर मनाया जाता है। गियर्ट्स चार प्रकार के स्लामेतान का उल्लेख करता है।

1) वे (स्लामेतान) जो जीवन के महत्वपूर्ण क्षणों से जुड़े है।

2) दूसरे वो जो इस्लामी धर्म के महत्वपूर्ण दिनों से संबंद्ध है।

3) तीसरे ''बर्सिह दे'' सा यानि सामाजिक एकता के लिये गॉवों से बुरी आत्माओं को भगाने के दिन से संबंद्ध है।

4) कभी–कभी मनाये जाने वाले स्लामेतान जैसे किसी लंबी यात्रा पर जाने से पूर्व घर बदलते समय बीमारी या जादू टोने आदि से संबंद्ध।

8.4.1 टिंगकेबान उदाहरण के रूप में

जन्म से संबंद्ध अनुष्ठान में चार स्लामेतान होते है। पहले को ''टिंगकेबान'' कहते है जो कि गर्भधारण के सातवे महीने मनाया जाता है। दूसरा जन्म के समय तीसरा जन्म के पांच दिन बाद और चौथा जब बच्चा सात महीने का हो जाता है, मनाया जाता है। इस ''टिंकेबान'' का वर्णन करेंगे, स्त्री के गर्भधारण के सातवे महीने मनाया जाने वाला स्लामेतान।

''टिंगकेबान'' जावाई औरत के मातृत्व से परिचय का प्रतीक है। यह केवल औरत को पहला बच्चा होने के समय होता है। यह गर्भवती औरत के मायके में मनाया जाता है। इसमें निम्नलिखित चीजों की आवश्यकता होती है।

1) प्रत्येक मेहमान को केले के पत्ते पर चावल परोसा जाता है जिसमें ऊपरी परत सफेद चावल की होती है और निचली पीले रंग की क्रमशः शुद्धता और प्रेम के प्रतीक है।

   चावल केले के पत्ते के दोने में परोसा जाता है, सुगठित दोना बच्चे के शक्तिशाली और तीक्ष्ण बुद्धि का प्रतीक होता है।

2) मरे हुए मुर्गे और कसे हुए नारियल के साथ चावल रसूल मोहम्मद के सम्मान में परोसा जाता है जिससे कि उपस्थित जनों को 'स्लामन'' की प्राप्ति हो। दो केले देवी प्रतिमा या फातिमा, मोहम्मद रसूल की बेटी को अर्पित होते है। यह उस समन्वय का एक अच्छा उदाहरण है, जिसका उल्लेख पहले किया गया है। फातिमा को हिन्दू देवी प्रतिमा भी माना गया है।

3) चावल के साथ छोटे पिरामिड (ढेर) जो कि गर्भ के सात महीनों के प्रतीक होते है।

4) आठ या नौ चावल के गोले जो कि उन बलियों के प्रतीक है जो इस्लाम को जावा लेकर आए थे।

5) चावल का एक बड़ा पिरामिड जो कि बच्चे के मोटे ताजे होने का प्रतीक होता है।

6) फलों और सब्जियों का एक ढेर जिनमें कुछ पेड़ पर लटकने वाले और कुछ जमीन के नीचे पैदा होने वाली सब्जियां होती है। पहला आकाश का प्रतीक है और दूसरा धरती का।

7) तीन प्रकार के चावल की लुगदी (दलिया) सफेद, लाल और दोनों का मिश्रण। सफेद माता के पानी का प्रतीक है, लाल पिता के और दोनों का मिश्रण आत्माओं से बचाव के लिये।

8) एडजढ़ लगी एक मसालेदार फलों का रस, काली मिर्च मसाला चीनी के साथ। यह ''टिंगकेवान'' की सबसे महत्वपूर्ण चीज है। यदि यह गर्भवती औरत को मसालेदार या तीखा लगता है तो माना जाता है कि उसके गर्भ में लड़की है, और यदि मसालेदार तीखा नहीं लगा तो लड़का माना जाता है।

8.4.2 विवाह – केपानगिहान

हाल–फिलहाल तक जावा में विवाह माता–पिता की पसंद से कराए जाते थे किन्तु आज कल लड़के लड़कियों की पसंद और समझ महत्वपूर्ण होने लगी है। फिर भी मर्यादा के लिये लड़कों के अभिभावक (माता–पिता) की ओर से औपचारिक अनुरोध लाभरान की प्रथा अब भी है। दोनों के माता–पिता एक अत्यंत औपचारिक बातचीत में ''नोटोनी'' लड़की देखने पर राजी होते है। लड़का अपने माता–पिता के साथ लड़की के घर जाता है, लड़की शर्माते हुए चाय देती है, और लड़का तिरछी नजर से लड़की को देखता है। वह यदि पसंद करता है तो अपने मॉ–बाप से वैसा कहता है और शादी तय हो जाती है। शादी या ''केपांगिहान'' हमेशा लड़की के घर ही होती है। लड़की की शादी उसके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण आयोजन होता है, और उसके माता–पिता इस शादी के लिये जो कर सकते है संघर्ष करते है। विवाह से पहले वाली शाम को दोनो पक्ष के माता–पिता के लिये ''स्लामेतान'' आयोजित किया जाता है। इसमें लड़का उपस्थित नहीं रहता। ''स्लामेतान'' के बाद लड़की को साधारण कपड़े पहना कर घर के बीचो–बीच लगभग पांच घंटे के लिये स्थिर बैठाया जाता है। माना जाता है कि लड़की में एक फरिश्ता प्रवेश कर जाता है, इसी से लड़की शादी के दिन इतनी सुन्दर लगती है। इस बीच लड़की की मॉ केमवंग भजांग पौधे से बना सजावट का सामान खरीदती है। लड़के और लड़की दोनों के लिये दो–दो खरीदे जाते है, जो कि इनके शील के प्रतीक होते है। इनमें से दो–दो मॉ अपनी बेटी के पास रख देती है और कर्मकांड समाप्त हो जाता है।

अगली सुबह किसी शुभ घड़ी लड़का अपने साथियों के साथ नभी के कार्यालय में (सरकारी धर्म कार्यालय) मे जाता है जहां उसके विवाह को वैध स्वीकृति दी जाती है। लड़की स्वयं नही जाती, उसका प्रतिनिधित्व उसका ''वली'' (इस्लाम के अनुसार उसका कानूनी अभिभावक) करत है। नभी के कार्यालय में लड़का अरबी में एक संबंद्ध अयात पढ़ता है (फिर उसे जावाई में दुहराता है) फिर वह ''वली'' को 5 पांच रूपया ''मस कवीन'' या शादी का सोना के रूप में देना, फिर नभी लड़का और अनुपस्थित लड़की को विवाहित घोशित करते हुए आयोजित समाप्त करता है।

8.5 सारांश

इकाई के आरम्भ में हमने जावा के इतिहास को लिया वहां आजीविका के आधार पर सामाजिक–आर्थिक संरचना और सांस्कृतिक संस्कार जैसा कि गिट्र्ज ने अपने शोध क्षेत्र मोरजाटुआ शहर में पाया देखा। हमने देखा कि जावा की सांस्कृतिक विषमता वहां के धार्मिक जीवन को समृद्ध करती है।

तत्पश्चात् हमने जावाई धर्म के मुख्य अनुष्ठान ''स्लामेतान'' की सामान्य पद्धति और उससे जुड़े हुए प्रतीकार्थ को समझा। हमने देखा कि जहां एकता और शक्ति जैसे मूल्यों की आवश्यकता होती है वहां ''स्लामेतान'' का आयोजन किया जाता है।

8.6 शब्दावली

समन्वय : विभिन्न विश्वास मतों में सामंजस्य स्थापित करना या करने का प्रयास करना।

शुद्धतावादी : जो व्यक्ति कड़े नैतिक, अनुशासन का पालन करता है।

सह–भोज : इस संदर्भ में इस शब्द का अर्थ है एक ही मेज पर भोजन करना।

शुभ : सौभाग्य, सफलता के साथ इस शब्द का प्रयोग सकारात्मक या भाग्यशाली अवसरों को चिन्हित करता है।

8.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- गिट्र्ज सी 1960, *डिरिलिन आफ जावा, फ्री* प्रेस..... न्यूयार्क,
- यू0जी0एस0वाई–05, समाज और धर्म इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

इकाई 9
नागरिक धर्म

ईकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 नागरिक धर्म के विषय में

9.3 नागरिक धर्म की प्रकृति

9.4 नागरिक धर्म के विभिन्न प्रकार

9.4.1 प्राचीन यूनान और रोमन नगरों में नागरिक धर्म

9.4.2 फ्रांस में नागरिक धर्म

9.4.3 अमेरिका में नागरिक धर्म

9.5 सारांश

9.6 शब्दावली

9.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त :

- ''नागरिक धर्म'' की अवधारणा को समझ सकेंगे;
- नगरिक धर्म की प्रकृति के विषय में जान सकेगें।
- नगरिक धर्म के प्रकारों का अध्ययन करेगें।

9.1 प्रस्तावना

यह इकाई में अनुष्ठान और समाज के धार्मिक पक्षों से गहरे रूप में जुड़ी हुई हैं पर कैसे, इस प्रश्न का जवाब देने के लिए आपका धर्मनिरपेक्ष और धार्मिक, दोनों प्रकार के अनुष्ठानों और नागरिक धर्म की अवधारणा के अन्तःसम्बन्ध को जानना जरूरी है।

इस इकाई के भाग 9.2 में नागरिक धर्म की अवधारणा की परिभाषा प्रस्तुत की जायेगी। भाग 9.3 में नागरिक धर्म की प्रकृति और विकास को रेखांकित किया जायेगा।

9.2 नागरिक धर्म के विषय में

नगरिक धर्म क्या है? इस अवधारणा के अध्ययन की क्या आवश्यकता है? ''राजनीतिक

राज्य के इतिहास में नागरिक मूल्यों और परम्पराओं के प्रति धार्मिक या अर्ध धार्मिक समाज को नागरिक धर्म के रूप में परिभाषित किया गया है।

राजनीतिक राज्य के नागरिक मूल्यों और परम्पराओं के प्रति सम्मान की अभियुक्ति कुछ खास त्योहारों, अनुष्ठानों सिद्धान्तो और मताग्रहों के माध्यम से होती है जो अतीत के महान महापुरूषों और घटनाओं के प्रति सम्मान व्यक्त करते है। इस प्रकार के महापुरूष जैसे स्वतंत्रता सेनानी, सामाजिक और राजनीतिक सुधारक और राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के समान प्रमुख राष्ट्रपति की अपने समाज के सामाजिक राजनीतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसी प्रकार महत्वपूर्ण घटनाओं का भी अपने राज्य और समाज पर प्रभाव पड़ता है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम ने धर्म की जिस प्रकार व्याख्या की है उस अर्थ में यह भी एक प्रकार का धर्म है। दुर्खीम के अनुसार धर्म प्रथाओं और विश्वासों की एक एकीकृत व्यवस्था है जो पवित्रता की वस्तुओं से जुड़ी है। कहने का तात्पर्य यह है कि इसका सम्बन्ध ऐसी वस्तुओं से है जो एक तरफ अलग से रख दी गई है। इसके साथ–साथ इसमें अतीत में विश्वास और प्रथाएं भी शामिल होती है जो समुदाय को नैतिक रूप से चर्च जैसे सामाजिक संस्था होती है जहॉ लोग पूजा करते है।

कार्लटन जे.एच.हेज. ने अपनी पुस्तक ''एसेज आन नेशनलिज्म'' (1926) में लिखा है कि यदि हम मानव इतिहास का परीक्षण करें तो पायेंगे कि मनुष्य की अधिकांश गतिविधियॉ भावात्मक रूप से धार्मिक ही है। यह स्पष्ट है कि बहुत से लोगों के लिए राष्ट्रीयता प्रकारान्तर से धर्म का ही एक रूप है जो लोगों में गहरी और प्रबल भावुकता पैदा करने की शक्ति रखता है जो धर्म की अनिवार्य प्रकृति होती है।

वह लिखता है कि मानव इतिहास इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य हमेशा से ''धार्मिक समझ'' के कारण ही अलग से पहचाना जाता है। दूसरे शब्दों में लोग अपने से बड़ी किसी रहस्यात्मक शक्ति में विश्वास रखते है और ये विश्वास उनके अन्दर एक सम्मान का भाव पैदा करता है और यह अक्सर बाहरी क्रियाकलापों और समारोंहों के माध्यम से अभिव्यक्त होता है।

धर्म की समझ के इस सन्दर्भ में, देशभक्ति और राष्ट्रीयता के भाव के रूप में, एक विशेष सामाजिक राजनीतिक समूह से जुड़े हुए भाव के सन्दर्भ में, हमे नागरिक धर्म की अवधारणा को समझना होगा। नागरिक धर्म उच्च तकनीकी से युक्त विकसित आधुनिक समाज का अर्थ है।

निसबेत का कहना है कि पश्चिम के आधुनिक राष्ट्रीय राज्य में नागरिक धर्म स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आया है।

9.3 नागरिक धर्म की प्रकृति

नागरिक धर्म की अवधारणा कोई नयी अवधारणा नहीं है। यह प्राचीन यूनान और रोम से लेकर मध्य युग तक और पश्चिमी यूरोप में पुनर्जागरण के दौरान कई समाजों में पायी जाती रही है। भूमध्य सागरीय संसार में प्राचीन पवित्र राज्य सिद्धान्त में नागरिक धर्म के तत्व

पाये जाते थे अर्थात् वहॉ राजा या सम्राट की पूजा भगवान के रूप में होती थी। यह कई समाजों की विशेषता रही है। ब्रिटिश पूर्व काल में हमारे समाजों में भी यह तत्व पाया जाता था।

राजनीतिक और सामाजिक गतिविधियों को मिलाने का एक ऐसा ही उदाहरण दूसरे विश्वयुद्ध तक जापान के इतिहास में भी प्राप्त होता है। 19वीं शताब्दी के इतिहासकार फुस्टेल डि कालेंजेज ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''द एंसिएंट सिटी'' में प्राचीन यूनान और रोमन नगर राज्यों के नागरिक धर्मों का उल्लेख किया है।

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं नागरिक धर्म या अर्धधर्म में कुछ नागरिक मूल्यों और परम्पराओं के प्रति समझाने का भाव होता है और इसकी झलक पश्चिम के आधुनिक राष्ट्रीय राज्यों में स्पष्ट रूप से मिलती है। निसबेत का मानना है कि यह एक प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक कारकों का परिणाम है। 16वीं और 17वीं शताब्दी के दौरान ईसाई धर्म के दो प्रमुख पंथों यूरोपीय प्रोटेस्टेन्ट और कैथोलिकों के बीच नाशमूलक संघर्ष चल रहा था। इसी काल के बाद ज्ञानोदय का काल आया।

रूसों, जीन, जेक्स (1712–1718) का जन्म जेनेवा में हुआ था। उसने अपने जीवन का अधिकांश हिस्सा फ्रांस में बिताया था पर वह हमेशा अपनी पितृभूमि को याद करता था। वह अपने नाम के आगे ''जेनेवा का नागरिक'' उपनाम लगाया करता था।

बचपन में ही वह अपनी मॉ खो चुका था। उसके जन्म के तुरंत बाद ही उसकी मॉ की मृत्यु हो गयी थी। उसने अपने पिता आइजाक रूसों से शिक्षा ग्रहण की थी। आइजाक रूसों एक कुशल घड़ीसाज था। पर वह बहुत जल्दी गुस्से में आ जाता था। उसने अपने पुत्र के बचपन में ही उसके पढ़ने की आदत को भांप लिया था।

तेरह वर्ष की आयु में रूसों को अपना जन्मस्थान छोड़ना पड़ा और तूरीन जाना पड़ा जहॉ वह बिना कुछ समझे–बूझे रोमन कैथोलिक बन गया। उसने अपने जीवन के अन्तिम समय में लिखा था ''मैं कैलोलिक बन गया पर रहा हमेशा ईसाई ही''। तूरीन में रूसों ने कब्र खोदने का व्यवसाय छोड़कर नया व्यवसाय प्राप्त करने की कोशिश की। 1729 में सेवोय में एक माइन डि वारेन्स नामक व्यक्ति ने उसे शरण दी और उसकी सहायता की। यह काल लेखक के जीवन का एक निर्णायक काल था।

अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ ''सोशल कॉन्ट्रैक्ट'' और अपने अन्य लेखों में बताया है कि वह सामाजिक जीवन की जरूरतों से सताया हुआ व्यक्ति है। सामाजिक संबंधों के कारण मनुष्य में एक प्रकार की निर्भरता और दब्बूपन आ जाता है। इस निर्भरता से उत्पन्न होने वाले झगड़ों और दुश्मनियों के खतरे से वह वाकिफ था। समाज लोगों को नजदीक लाता है पर वस्तुतः लोगों को एक दूसरे का दुश्मन ही बनाता है। इसी संदर्भ में उसने एक प्रसिद्ध उक्ति लिखी थी ''मनुष्य स्वतंत्र पैदा होता है लेकिन हर जगह वह अपने को जंजीरों से जकड़ा पाता है''। अपनी इस उक्ति के कारण रूसों आज तक अमर है।

रॉबट निसबेत (1968) के अनुसार 19वीं शताब्दी के यूरोप और संयुक्त राष्ट्र में उभरने वाली राष्ट्रवाद की भावना में एक प्रकार का धार्मिक उत्साह था। पर यह प्राचीन और मध्ययुगीन समाजों के नागरिक धर्म से भिन्न था। वह जर्मन दार्शनिक हेगल का उदाहरण देता है जिसने राष्ट्रीय राज्य अर्थात अपने राज्य पर्शिया को ''पृथ्वी पर भगवान का अवतार'' माना है। हेगल के इस व्यक्तिगत विचार से यूरोप और अमेरिका के राष्ट्रवादी सहमत नहीं हो सकते हैं पर अपने देश के मामलें में अधिकांश राष्ट्रवादी इसे ईश्वर की दे नही मानते है।

राष्ट्रवाद के उदय के साथ–साथ सैन्यवाद और प्रजातिवाद का भी उदय हुआ। इनके आपस में मिल जाने से इस दौरान कई जनविद्रोह और प्रतिक्रियायें घटित हुई मानव इतिहास में इस प्रकार की घटना केवल यूरोप में 16वीं 17वीं शताब्दी में हुए धार्मिक युद्धों में ही देखने को मिलती है। निसबेत का मानना है कि बहुत संभव है कि प्रथम विश्वयुद्ध यूरोप के इसी राष्ट्रवादी धार्मिक चेतना का परिणाम हो।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जब नाजीराष्ट्रवाद का उदय हुआ और यहूदियों के ऊपर आक्रमण होने लगे तब लोगों के मन में अतिराष्ट्रवाद के प्रति घृणा और डर का भाव पैदा हुआ। इसके बाद से ही एक राष्ट्र के लिए धार्मिक उत्ताप पर प्रश्नचिन्ह लग गया। आज हम देखते है कि प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान जिस प्रकार का राष्ट्रवाद और नागरिक धर्म उपस्थित था आज समूचे प्रजातांत्रिक विश्व में उसका पतन हो गया है। फि भी आज हम राष्ट्र के मामलें में धार्मिकता से मिली जुली संवेदनाओं की अभिव्यक्ति यत्र तत्र देख सकते है।

9.4 नागरिक धर्म के विभिन्न प्रकार

आर एन बेलाह और पीटर हेमीन्ड (1980) जैसे धर्म के समाजशास्त्र के सिद्धान्तों ने विभिन्न समाजों खासकर जापान, मेक्सिको, इटली में एक खास प्रकार की आस्था का अस्तित्व ज्ञाते किया है। यह सामान्य आस्था इन समाजों की विभिन्न संरचनाओं में परिलक्षित होती है। बेलाह और हेमौड ने विभिन्न संस्कृतियों की तुलना करते हुए पाया है कि इनमें से किसी समाज में भी अमरीकी की तरह नागरिक धर्म की पूर्ण संरचना उपलब्ध नहीं है।

9.4.1 प्राचीन यूनान और रोमन नगरों में नागरिक धर्म

मानव समाजों के इतिहास के दौरान कुछ खास परिस्थितियों और धार्मिक समझ के कारण पुरातन धर्म के ईश्वर का स्पट स्वरूप सामने आया। बेलाह का मानना है कि एक खास तरह के धार्मिक संगठन या स्वरूप के उदय के लिए विभिन्न प्रकार के सामाजिक संगठन का होना जरूरी है।

इसी संदर्भ में स्वानसन नामक एक अन्य विद्वान ने धर्म को केन्द्र में रखकर विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन किया कि सांख्यिकी के लिहाज से पुरातन धर्मों में उपस्थित विभिन्न ईश्वरों की मौजूदगी को समाज में निहित विभिन्न विशिष्ट समुदायों की उपस्थिति से जोड़कर देखा जा सकता है। (स्वानसन, जी.ई. 1960 : पृष्ठ 82–96) उसने यह भी पाया कि एक खास क्षेत्र में और समाज के अलग–अलग सामाजिक और व्यावसायिक क्षेत्र में एक सर्वोच्च ईश्वर से

विकास की पद्धति पायी जाती हैं

स्वानसन और एक और विद्वान मूरे के अनुसार यह पद्धति सर्वोच्च सम्प्रभु समुदाय के परिवार से निकलती है। इसी परिवार में पहली बार किसी धार्मिक प्रथा का जनम होता है जिसमें पारिवारिक ईश्वर की पूजा होती है जो उस खास परिवार या वंश के हितों का ध्यान रखता है। परिवार का खास हित उस पारिवारिक ईश्वर का भी खास हित होता है। जैसे–जैसे समाज जटिल होता जाता है वैसे–वैसे इस अन्तरसंबंध में आने लगता है। धर्म की इस विकास प्रक्रिया में एक परिवार का भगवान इसके साथ जुड़े एक खास व्यावसायिक समुदाय का भगवान हो जाता है।

विद्वानों का मानना है कि वृहद् सामाजिक समुदायों के उदय के साथ–साथ कुछ स्थानीय भगवानों का भी उदय होता है और एक खास व्यवसाय और क्षेत्र से जुड़े हुए लोगों का ईश्वर मिलकर एक ईश्वर में परिवर्तित हो जाता है। लेकिन मिलन की यह प्रक्रिया एक स्पष्ट विचार पर आधारित होती है और वहॉ तक पहुॅचने के बाद मिलन की प्रक्रिया बन्द हो जाती है। जहॉ इस प्रकार की स्पष्ट अवधारणा नहीं पायी जाती थी वहॉ के पुरातन धर्म धार्मिक विकास के अंतिम चरण तक नहीं पहुॅच पाये।

हालॉकि जिन स्थानों पर स्थानीय ईश्वरों का अंतिम सम्मिलन न हो सका वहॉ समाज में सामाजिक और राजनैतिक अंतर कायम रहा और ईश्वरों के कई प्रकारों या स्वरूपों के रूप में सहज ढंग से धार्मिक अभिव्यक्तियॉ सामने आयी। प्राचीन रोम और यूनान के मामलें में कुछ ऐसा ही हुआ था।

9.4.2 फ्रांस में नागरिक धर्म

18वीं शताब्दी के दौरान फ्रांस में न केवल सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक उथल–पुथल हुई बल्कि धार्मिक संशयवाद और धर्म संबंधी संदेह का युग भी सामने आया। मानव इतिहास में यह सर्वाधिक निर्णायक दौर था क्योंकि इसी के बाद यूरोपीय समाज का सामंतवादी ढांचा टूटा और जनतांत्रिक समाज कायम हुआ।

इसी काल में फ्रांसीसी क्रांति हुई और वाल्टेयर जैसे इस काल के विद्वानों और बौद्धिक साहित्यों ने आधिभौतिक धर्म और धार्मिक संस्थाओं पर जमकर प्रहार किया उन्होंने ईसाई परम्परा के साथ–साथ बाइबिल की भी आलोचना की और खिल्ली उड़ाई।

तर्क प्राकृतिक विज्ञान से प्रभावित ये विद्वान तर्क और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विशेष महत्व देने लगे। इस प्रकार के मानसिक ढांचे में चमत्कारों, अंधविश्वासों, सोचने और समझने के परम्परागत तरीकों पर प्रश्न चिह्न लगने लगा। ईसाई धर्म को अंधविश्वासी और इसके पादरियों को कपटी घोशित किया गया। ईसाई धर्म के इतिहास मे पहली बार ईसाई धर्म के कई प्रभावशाली अनुयायियों ने खुले रूप में इसके आधारभूत सिद्धान्तों और इसमे निहित सत्यों की आलोचना की। जैसा कि हेज बताता है कि बहुत से बुद्धिजीवियों ने त्रिसिद्धान्त को एक प्रकार की धोखा धड़ी और बनावटीपन माना है। उन्होंने ईसाई रहस्योद्घाटन या किसी अन्य

अधिभौतिकता को बेकार माना क्योंकि इसमें मनुष्य अपने विश्वास और श्रद्धा को किसी भी प्रकार न्यायोचित नही ठहरा सकता था।

18वीं शताब्दी के दौरान यूरोप खासकर फ्रांस के बुद्धिजीवियों ने तर्क का सहारा लिया उन्होंने ईसाई धर्म को नहीं अपनाया। लेकिन इसके बावजूद हेज का मानना है कि इन बुद्धिजीवियों में भी एक प्रकार का धार्मिक लक्षण था जो कई रूपों में दृढ़ता से प्रकट हुआ। उन्होंने प्रकृति के ईश्वर में आस्था रखी और उन्होंने कहा ''कि इस प्रकृति को कोई नहीं रोक सकता और इसके तहत असंख्य संसार निहित थे, इसमें कई ग्रह, उपग्रह शामिल थे और ये सभी आन्तरिक अपरिवर्तनीय विधानों से संचालित थे जिसे इस नन्ही सी पृथ्वी पर छोटे से मनुष्य के लघु अस्तित्व को देखने या सुनने का समय नहीं है।''

9.4.3 अमरीका में नागरिक धर्म

अमेरिकी समाज में नागरिक धर्म का सुसंगठित और विकसित स्वरूप देखने को मिलता है। अमरिकी समाज बड़े ही नाटकीय ढंग से 19वीं और 20वीं शताब्दी के दौरान पश्चिम में राष्ट्रवाद के धर्म का प्रतिनिधित्व करता है।

राष्ट्रवाद के उदय के साथ–साथ यूरोप के सभी देशों में राजनीतिक पुजारियो (कलर्जी) का उदय हुआ। मध्य काल के पुजारी चर्च के प्रति समर्पित थे और ये पुजारी राष्ट्र के प्रति। पहले बच्चें का जन्म और उसकी पहचान चर्च से जुड़ी होती थी। अब उसका संबंध राष्ट्र राज्य से जुड़ गया। जन्म, विवाह और मृत्यु सभी नागरिक राज्य की हद में आ गये।

परिवार विद्यालय और सामाजिक कल्याण के मामलों का जिम्मा चर्च की जगह नागरिक सरकार लेने लगी। अमरिका में पहले ईसाई संतों और मसीहों के जन्मदिन बड़े धूम–धाम से मनाये जाते थे। अब वाशिंगटन, जेफरसन और लिंकन जैसे महान राजनीतिक व्यक्तियों के जन्मदिन पूरे उत्साह औश्र सम्मान के साथ मनाये जाने लगे। इसी प्रकार राष्ट्र के लिए ऐतिहासिक महत्व की महान घटनाओं को भी धार्मिक सम्मान प्राप्त हुआ। हमारे 15 अगस्त के समान 4 जुलाई को एक प्रकार का धार्मिक पर्व घोशित किया गया। इसकी तुलना ईसाई धर्म के ईसा के जन्मोत्सव से की जा सकती है।

''अमेरिका में नागरिक धर्म'' नामक अपने लेख में आर0 एन0 बेलाह ने लिखा है कि ''ईसाई धर्म एक राष्ट्रीय धर्म है और चर्च तथा सिनेगात ''अमेरिकन जीवन पद्धति'' के आम धर्म की जरूरत पूरी करते है। कुछ लोगों ने ही यह महसूस किया कि अमरिका में चर्च के समानान्तर और यहां तक की उससे बिलकुल अलग एक विस्तृत और संगठित नागरिक धर्म उपस्थित है।''

निसबेत का मानना है कि अमरीकन नागरिक धर्म के पास एक विस्तृत और मान्यता प्राप्त सिद्धान्त है। जिसमें धर्म सिद्धान्त, धर्मोपदेश और हठधर्मिता भी शामिल है। अन्य देशों की तरह अमरिका में भी अमरीकी राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्र नागरिक एकता के प्रतीक चिह्नों के साथ कई जटिल अनुष्ठान जुड़े हुए है।

वह कहता है कि इस काल के दौरान आमतौर पर प्रोटैस्टेन्ट मान्यता के अनुयायियों ने कैथोलिकों के विश्वास के प्रतीकों जैसे ईश्वर की मूतिर्यों, भित्ति चित्रों, चित्र कलाओं आदि की निन्दा की पर राष्ट्रीय समारोहों में इस प्रकार की साज–सज्जा की आलोचना उन्होंने कभी नहीं की। उसका कहना है कि अमरीका के सभी सार्वजनिक चौराहे पर दिवंगत राजनीतिक नेताओं की मूर्तियां देखने को मिलती है। तत्कालीन सभी यूरोपीय देशों के संबंध में भी यह तथ्य सही है।

9.5 सारांश

इस इकाई में आपके समक्ष नागरिक धर्म के विभिन्न आयामों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। नागरिक धर्म को ''राजनीतिक राज्य के हाल के इतिहास में प्राप्त कुछ नागरिक मूल्यों और परम्पराओं के प्रति धार्मिक या अधार्मिक सम्मान'' के रूप में परिभाषित किया गया है। आप जानते है कि यह अवधारणा अर्धधार्मिक भाव या सम्मान के साथ जुड़ी हुई है जिसके तहत महान राजनीतिक घटनायें और महान व्यक्तियों के जन्मदिन या पुण्य तिथियॉ धूमधाम के साथ मनायी जाती है।

नागरिक धर्म कोई नयी संकल्पना नहीं है बल्कि यह प्राचीन यूनान और रोमन समाजों में भी पायी जाती थी। नागरिक धर्म में हम राजनीतिक और धार्मिक तत्वों का मिला जुला रूप पाते है। यह द्वितीय विश्वयुद्ध तक के जापानी इतिहास में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

इस इकाई में संक्षेप रूप में मानव इतिहास में नागरिक धर्म की अवधारणा की प्रकृति और विकास की जानकारी प्राप्त की। हमने प्राचीन यूनान और रोमन नगर राज्यों, फ्रांसीसी क्रांति और उसके बाद के फ्रांसीसी समाज और अमरीकी समाज में मौजूद नागरिक धर्म के विभिन्न प्रकारों से भी आपको परिचित कराया।

9.6 शब्दावली

त्रिसिद्धान्तः ईश्वर, पिता, ईसा मसीह, पुत्र और पवित्र प्रेतात्मा का पवित्र मिलन। यह ईसाई मत के विश्वास और धर्म सिद्धान्त का एक हिस्सा ळें

सामाजिक समझौताः पारस्परिक सामाजिक सह–अस्तित्व के लिए मनुष्य द्वारा कुछ कायदों और मूल्यों को स्वीकार किया जाना।

पुनर्जन्मः समाज के पतन और विनाश के कुछ काल बाद नयी सामाजिक संस्थाओं, व्यवस्थाओं मूल्यों और विश्वासों का उदय।

देशभक्तिः देश के प्रति प्यार या निष्ठा।

मानव गतिविधिः कुछ विशेष सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक या पर्यावरणीय कारणों से काफी मात्रा में लोगों का एक भौगोलिक क्षेत्र से दूसरे भौगोलिक क्षेत्र में जाना।

विध्वंसः नाजियों द्वारा दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान वृहद पैमाने पर यहूदियों की हत्या।

व्यक्तिक्रमीः निर्धारित नियमों के विपरीत जाने वाला व्यक्ति

पुजारीः चर्च जैसे पवित्र स्थल को संचालित करने वाले व्यक्ति को ''क्लर्जी'' या पुजारी कहते है।

नागरिक संबंधीः नागरिक होने से सम्बद्ध

9.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- हारगोव, बारबरा 1989 : *दि सोसिओलोजी आफ रिलिजन क्लासिक एंड कन्टेम्परेरी एप्रोचेज, अरलिंगटन हाइट्स, इलिनयस*
- निसबेत राबर्ट, 1968 : *''समाज विज्ञान के अनर्तराष्ट्रीय इन्साइक्लोपीडिया''* के खंड 1, पृष्ठ 524–527 में *''सिविल रिलिजन''* मैक्मिलन और फ्री प्रेस
- वुदनो राबर्ट, 1968 : *दि रिस्ट्रक्चरिंग ऑफ अमेरिकन रिलिजन सोसाइटी एंड फेथ सिंस ब्ल्र्डवार* प्रिंस्टन युनिवर्सिटी प्रेस–
- यू0जी0एस0वाई–05, समाज और धर्म इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

इकाई–10
धर्म एवं अर्थव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 समाज एवं धर्म

10.3 धर्म एवं अर्थव्यवस्था

10.4 पूँजीवाद और धर्म

10.4.1 कार्ल मार्क्स

10.4.2 मैक्स वेबर

10.5 विकास और हिन्दू धर्म

10.5.1 हिन्दू धर्म पर मार्क्स के विचार

10.5.2 हिन्दू धर्म एवं पूँजीवाद पर वेबर के विचार

10.6 सारांश

10.7 शब्दावली

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त :

- समाज एवं धर्म के विषय में जान सकेंगे।
- पूँजीवाद के विकास में धर्म की भूमिका पर जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- अर्थव्यवस्था एवं धर्म के बीच संबंध को समझ सकेगें।
- हिन्दू धर्म और विकास के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते हैं, यह पाठ्यक्रम धर्म एवं समाज से संबंध है। इन इकाईयों से आप जान सकेंगे कि किस प्रकार समाजशास्त्री धर्म के उद्गम, कार्य और संगठन का अध्ययन कर धर्म को समझने का प्रयास करते है। विभिन्न सामाजिक प्रथाओं के आपसी संबंध समाजशास्त्रियों के लिये विशेष रूचि रखते हैं।

10.2 समाज एवं धर्म

जैसा कि आप जानते है, जीवन रहस्यों से भरा हुआ है। मृत्यु, जन्म, सृष्टि, स्वयं जीवन ही एक रहस्य है। हमारे आसपास के रहस्यों को धर्म सुझाता है। जीवन की अनिश्चितताओं का सामना करने में मनुष्यों की सहायता धर्म करता है। शुरू से ही समाजशास्त्री मानव और धर्म को समझने में लगे हुए है।

धर्म हमारे जीवन का एक आधार है और हमारी बोल–चाल में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। मिथक रीति–रिवाजों और अनुष्ठानों द्वारा यह हमारे जीवन को अर्थ प्रदान करता है। धर्म से हमें अतीत का बोध और भविष्य के लिये लक्ष्य मिलते है।

10.3 धर्म और अर्थ व्यवस्था

जिस धर्म में मनुष्य की मुक्ति का मार्ग कठोर परिश्रम माना गया है, उसके अनुयायी निश्चित रूप से समर्पित और ईमानदार श्रमिक होंगे। दूसरी ओर, यदि किसी धर्म में काम के पिदे पापों की सजा के रूप में देखा गया हो तब तो उसमें समर्पित और ईमानदार श्रमिक मिलने से रहे। इस बात को एक अलग तरह से देखे। यदि किसी धर्म में काम के प्रति ईमानदारी और लगन पर बहुत जोर हो तो अनुयायी कारखानों में श्रमिकों के शोषण को नजरअंदाज भी कर सकते है।

धार्मिक मान्यताएँ उपभाग को भी प्रभावित करती है। यदि किसी धर्म के अनुयायी शुद्ध शाकाहारी हो, तो मांस की मांग ही नही होगी। यदि किसी समाज मे शंखों का धार्मिक महत्व हो तो उन्हें संभाला जायेगा। यदि मद्यपान निशिद्ध हो तो शराब के कारखानों को बंद कर दिया जायेगा। इसलिये यह कहना सही है कि धर्म मनुष्य की आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करता है।

अक्सर यह भी देखा गया है कि आर्थिक संकटों से धर्म उत्पन्न होता है। भारत की अनेक जनजातियों में भूमि हस्तान्तरण और गरीबी साथ–साथ नये धार्मिक पंथों का उदय हुआ। नये 'मसीहे' या पैगम्बर इन पंथों के माध्यम से संकट का सामना करने का प्रयास करते है।

10.4 पूँजीवाद और धर्म

15वीं और 16वीं शताब्दियों में यूरोप में विज्ञान, दर्शन एवं पुनर्जागरण के प्रभाव से सामंतवादका पतन हो रहा था। अनेक सामंतवादी देशों में कैथोलिक चर्च की मजबूत जड़े थी सामंतवाद के परिवर्तन के साथ–साथ धार्मिक क्षेत्र में भी परिवर्तन आने लगा। कैथोलिक चर्च के धर्मसिद्धान्तों को नई विचारधाराओं ने चुनौती दी। ''पोप' का अधिपत्य, राष्ट्र के कार्य में चर्च की दखल विशेष रूप से कड़ी आलोचना के मुद्दे बने। पूँजीवाद के विकास के साथ–साथ अनेक प्रोटेस्टैट पंथों का उदय हुआ। सवाल यह उठता है कि आप पूँजीवाद के विकास ने प्रोटेस्टैट पंथों को जन्म दिया अथवा क्या प्रोटेस्टैट पंथों के उदय के कारण

पूँजीवाद का विकास हुआ।

10.4.1 कार्ल मार्क्स (1818–1883)

मार्क्स ने अपना ध्यान धर्म पर नहीं बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था के अध्ययन पर केन्द्रित किया। पर पूँजीवाद के अध्ययन के दौरान उसने समाज के बारे में एक व्यापक दृष्टिकोण का भी विकास किया जिसके अंतर्गत समाज के लगभग सारे पहलू विशेषतः धर्म और राजनीति शामिल थे। समाज की इन परिकल्पना का आधार अर्थव्यवस्था है। जो सामाजिक ढॉचे अन्य भागों को स्वरूप निर्धारित करता है। जर्मनी के यहूदी समाज के सदस्य होने के नाते मार्क्स ने हेग और फॉयरबारव की बौद्धिक विरासत का लाभ उठाया। दूसरे शब्दों में मार्क्स द्वारा धर्म के विषय में विचार मोटे तौर पर हेगल और फॉयरबाख के विचारों की प्रतिक्रिया के रूप में है।

हेगलः हेगल ने मानव इतिहास को तीन युगों में विभाजित किया जो कि ''परम आत्मा'' के विकास से जुड़े हुए है। यह परम आत्मा क्या है। यह उस शक्ति का नाम है जो व्यक्तिगत और वस्तुगत तत्वों का एकीकरण है। साधारण शब्दों में यह मनुष्य और सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था के बीच द्वंदात्मक एकता है। इतिहास के पहले दौर या युग में यह परम आत्मा कला का रूप लेती है, दूसरे युग में ''धर्म'' का, तीसरे युग अंतिम युग में ''सम्पूर्ण ज्ञान'' का रूप लेती है। दूसरे युग में मनुष्य ईश्वर के बारे में सोचने लगता हैं हेगल कहता है कि मनुष्य और ईश्वर का संबंध मनुष्य और मनुष्य के संबंध में प्रतिबिंबित होता है। इससे दो बाते स्पष्ट होती है, पहली बात यह है कि मनुष्य की जीवन आदर्श या दिव्य क्षेत्र/जगत का भौतिक रूपांतर है, दूसरी की धर्म यह दर्शाता है कि मनुष्य किस प्रकार अपने बारे में सोचता है या अपनी कल्पना करता है। यदि हम पहली बात को बढ़ाये तो हम देख सकते हैं कि धर्म वह नींव है जिसपर अनेक सामाजिक व्यवस्थाएं या ाआदि संरचना टिकी हुई है। ईसाई धर्म का उदाहरण देते हुए हेगल कहता है कि इसके उदय के कारण ही उदारवादी राष्ट्र पनप सके।

ईश्वर के माध्यम से मनुष्य को पहचाना जा सकता है, और मनुष्य के माध्यम से उसके ईश्वर को। फायरवोश्य मानता है कि धार्मिक विचारों की जड़ मनुष्य के मन में ही होती है। अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने की क्षमता सीमित होने के कारण मनुष्य एक सर्वशक्तिमान ईश्वर का निर्माण करता है, जो सारे गुणों से निपुण है।

मार्क्सः धर्म एक विचारधारा है धर्म के दो कार्य ळै। यह शासक वर्ग की राजनैतिक विचारधारा के रूप में काम करता हैं धर्म आम जनता का नशा है। मार्क्स के धर्म संबंधित विचार 19वीं शताब्दी के प्रशियाई राष्ट्र और प्रोटेस्टैट धर्म के अनुभव से प्रभावित रहे है। एशियाई राष्ट्र प्रोटेस्टैट धर्म को प्रोत्साहन और रक्षा प्रदान कर रहा था, जिसकी मार्क्स ने आलोचना की। इसका कारण यह था कि प्रोटेस्टैट धर्म उस नये वर्ग की विचारधारा के रूप में काम करने लगा जो सामंतवाद के पतन के बाद उभरा।

मार्क्सः धर्म अलगाव का रूप है।

10.4.2 मैक्स वेबर (1864–1920)

मैक्स वेबर दूसरे जर्मन विद्वान है जिन्होंने यूरोप में पूंजीवाद के उदय का अध्ययन किया। वेबर के अध्ययन की मूल धारणा तर्कसंगति पर तर्कसंगतिकरण है। तर्कसंगतिकरण के अंतर्गत दो प्रक्रियाँ साथ–साथ सामने आती है। प्रथम जादूई विचारों में परिवर्तन और दूसरी, विचारों का क्रमबद्ध या व्यवस्थित होना और उनमें एक प्रकर की स्वाभाविक एकरूपता आ जाना।

वेबर तर्कसंगतिकरण की इस धारणा का उपयोग धर्म, विज्ञान, कला, प्रशासन और राजनीति में परिवर्तन को समझने के लिये करता हैं वेबर मानता है कि पूंजीवाद का जन्म आर्थिक क्षेत्र के तर्कसगतिकरण से हुआ। विचार वेबर मानता है और सिद्ध करता है कि विचार विकास की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करते है। पूंजीवाद के विकास में प्रोटेस्टैट पंथों के विचारों ने महत्वपूर्ण भूमिका दा की। मैक्स वेबर कृत ''प्रोटेस्टैट एथिक एण्ड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिस्म'' 1904 और 1905 के बीच जर्मन भाषा में प्रकाशित हुआ। तब से यह दुनिया भर के समाज वैज्ञानिकों के लिये चर्चा का विषय बना है। खास तौर पर दूसरे महायुद्ध के बाद तीसरी दुनिया (विकासशील देशों) के विद्वान भी इस चर्चा में हिस्सा लेने लगे।

वेबर ने पाया कि पूर्वी देशों की अपेक्षा पश्चिमी देशों में तर्कसंगतिकरण का अधिक विकास हुआ है। विज्ञान का उदाहरण ले। वेबर कहता है कि पश्चिमी सभ्यता में ही विज्ञान विकास के उच्च चरण तक पहुॅचा है। वह स्वीकार करता है कि भारत, चीन और मिश्र में ज्ञान की महान परंपरा थी, फिर भी प्रयोग की पद्धति के अभाव में वे पिछड़ गए। संगीत, वास्तुशिल्प, न्यायव्यवस्था, छपाई/मुद्रण, दफतरशाही पूंजीवाद जैसे अनेक क्षेत्रों में तर्कसंगतिकरण की मात्रा पश्चिम में अधिक है। तर्कसंगत पूंजीवादके उदय से संबंद्ध तीन मुद्दों की ओर वेबर ध्यान देता है : प्रथम : ''स्वतंत्र श्रमिकों की तर्कसंगत, पूंजीवाद व्यवस्था, दूसरा ''व्यवस्थित बाजार को और केन्द्रित तर्कसंगत औद्योगिक व्यवस्था'', तीसरा ''वैज्ञानिक जानकारी का तकनीकी उपयोग'' फायदा और घाटा ऑक्टा, हिसाब किताब रखना, बकाया निकालना सब पूंजीवादी व्यवस्था की विशेषताएॅ है। पूंजीवाद के उदय से पहले जादूई और धार्मिक शक्तियों को अधिक महत्व दिया जाता था। प्रोटेस्टैट धर्म ने ऐसी आर्थिक मनोवृत्ति को पैदा किया जिससे तमाम पारम्परिक जादूई धार्मिक शक्तियों विश्वासों का पतन हुआ और पूंजीवाद को पनपने का मौका मिला।

कैथोलिक एवं प्रोटेस्टैट– कैथोलिक और प्रोटेस्टैट अनुयायी अपनी धार्मिक मान्यताओं से अत्यंत प्रभावित थे, और इन्हीं के बल पर अपना पेशा और शिक्षा चुनते थे। आंकड़ों के जिकर करते हुए वेबर बताता है कि प्रोटेस्टैट अनुयायी अपने बच्चों को तकनीकी, औद्योगिक और वाणिज्य शैक्षिक संस्थाओं में भेजते थे। जबकि कैथोलिक बच्चे मानविकी पढ़ते थे। अधिकतर कुशल कारीगर और प्रशासक प्रोटेस्टैट ही थे।

पूँजीवादी मनोवृत्ति– प्रोटेस्टैट धर्म, विशेषतः कैविनिस्म ने एक ऐसी आर्थिक मनोवृत्ति दी जो पूंजीवाद के पनपने में सहायक रही। ''आर्थिक मनोवृत्ति के मायने है कार्य करने की वे

व्यावहारिक प्रेरणाएँ जो धर्म के मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक परिवेश से जुड़ी हुई है।'' बेजमिन फ्रैंक्लिन के कुछ उपदेश जैसे ''समय धन है'' ''साख धन है'' ''पैसे से पैसा पैदा होता है'' में तापसिक प्रोटेस्टैट वाद का सार है। प्रायः पारम्परिक समाजों में लोग आजीविका के लिये कमाया करते थे। पर प्रोटेस्टैटवाद ने आने से कमाना अपने आप में गुण बन गया, कमाना अपने व्यवसाय में कौशल्य का प्रमाण बन गया।

10.5 विकास और हिन्दू धर्म

कार्ल मार्क्स ने धर्म को अलगाव से जोड़ा जबकि वेबर ने कहा कि प्रोटेस्टैट पंथी के विचारों ने पूँजीवाद को पनपने का अवसर दिया। भारत और हिन्दू धर्म के विषय में दोनों विद्वानों की रूचि रही। मार्क्स के अनुसार हिन्दू धर्म एक ठहरे हुए सामाजिक परिणाम था, जबकि वेबर के अनुसार अन्य पूर्वी धर्मों की तरह धर्म में उपर्युक्त आर्थिक मनोवृत्ति नही थी, जिससे पूँजीवाद पनप सके।

10.5.1 हिन्दू धर्म पर मार्क्स के विचार

मार्क्स को भारत के विषय में बहुत ही सीमित जानकारी उपलब्ध थी। यह जानकारी उसे ब्रिटिश प्रशासकों के प्रवासवर्णनों, डायरियों और रिपोर्टों द्वारा मिली। इसके आधार पर उसने हिंदू धर्म के प्रकृति की पूजा और भारत को छोटे आत्मनिर्भर समुदायों के संगठन के रूप में देखा। मार्क्स इस बात से आकृष्ट था कि एक और हिन्दू धर्म अत्यंत विषयी था और दूसरी और अत्यंत तापसिक। मार्क्स के अनुसार यह अतिवाद एक ठहरी हुई सामाजिक व्यवस्था, जिसमें भूमि पर ग्रामीण गणतंत्र का स्वामित्व था, का नैसर्गिक परिणाम है। भारत की सामाजिक व्यवस्था व्यक्ति को बाह्य शक्तियों का शिकार बनाती है, जिसके परिणाम स्वरूप प्रकृति की आराधना/पूजा की जाती है।

मार्क्स की जानकारी एकतरफी और सीमित थी। इस विषय पर काफी अध्ययन हो चुका है, जिससे पता चलता है कि भारतीय समाज ठहरा हुआ नही था, और न ही ''छोटे समुदाय''। ग्राम कभी भी आत्मनिर्भर नही थे, और ग्रामवासियों को अनेक कार्यों के लिये ग्राम से बाहर जाना पड़ता था, जैसे कि विवाह संबंध, बाजार संबंधित कार्य और तीर्थयात्राएँ। रिश्तेदारी, व्यवसाय और धर्म के संबंध ग्राम की सीमाओं को पार करते थे। मार्क्स की भविष्यवाणी इस बात से भी गलत साबित होती है कि हिन्दू धर्म सदियों से इस महाद्वीप पर जीवित रहा है हालांकि कुछ विद्वानों के अनुसार इसका रूप निरंतर बदलता जा रहा है। यह भी कहा गया है कि मार्क्स ने हिन्दू धर्म को शोषण और नियंत्रण के माध्यम के रूप में नही देखा, जैसे उसने पाश्चात्य धर्मों को देखा।

10.5.2 हिंदू धर्म एवं पूँजीवाद पर वेबर के विचार

वेबर ने तपस्वी प्रोटेस्टैटवाद द्वारा दिये गये विचारों के पूँजीवाद के उदय और विकास से जोड़ा है। इस बात को आगे बढ़ाते हुए वेबर ने कहा कि पूर्वी धर्मों में जिनमें हिंदू धर्म एक है, पूंजीवाद को प्रोत्साहित करने वाली विचारधारा का अभाव है। हिंदू धर्म संबंधित वेबर के

विचार भारतीय समाज में प्रचलित ''सत्ता व्यवस्था'' और जाति व्यवस्था एवं कर्म अवधारणा से उत्पन्न आर्थिक मनोवृत्ति पर आधारित है। वेबर मानता था कि भारतीय समाज की सत्ता व्यवस्था में ब्राम्हणों का अधिपत्य था। केवल ब्राम्हण ही जिनका सामाजिक स्थान सबसे ऊँचा था। वेद पढ़ सकते थे। समाज के वर्गों में इसी वर्ग का सबसे ऊँचा स्थान था। समाज धर्म एवं व्यवसाय पर आधारित वर्गों में विभाजित था, वर्गों की प्रतिष्ठा ब्राम्हण वर्ग से उनकी निकटता अथवा दूरी पर आधारित थी। धर्म ने ब्राम्हण वर्ग को समाज में आधिपत्य प्रदान किया था, इसलिये हिंदू धर्म के व्यावहारिक पक्ष पर इस वर्ग का प्रभाव रहा।

''कर्म'' एवं जाति व्यवस्था ने इस सत्ता व्यवस्था को और अधिक मजबूत बनाया। जाति व्यवस्था असंगत थी, अतः भारत ने पूंजीवाद पनप न सका। जैसे सबसे पहले, जाति व्यवस्था के कारण लाखों श्रमिक अपने उच्च जाति के स्वामियों के सेवक मात्र बने रहे। दूसरे जाति व्यवस्था के अन्तर्गत किसी एक वर्ग को ऊँचा स्थान मिलता था, जकि अन्य वर्गों पर तरह–तरह की असुविधॉ लादी जाती थी। तीसरे, समाज के इस व्यावसायिक वर्गीकरण के पीछे धार्मिक छूट थी, जिससे जाति व्यवस्था और अधिक शक्तिशाली बन गई। चौथे, जाति व्यवस्था जन्म पर आधारित थी, अतः व्यवसाय भी जन्म से जुड़े हुए है। जब कुछ वर्ग विशिष्ट व्यवसायों पर एकाधिकार प्राप्त करते है तब व्यावसायिक विभाजन स्थिर होता है। वेबर के अनुसार कर्म सिद्धान्त का अभिप्राय यह है कि इस जीवन में किये गये कर्म व्यक्ति के अगले जीवन को प्रभावित करते है। इस जन्म में अपना कर्म करने का परिणाम यह होगा कि अगले जन्म में व्यक्ति की सामाजिक परिस्थिति बेहतर होगी। यदि व्यक्ति अपना जाति धर्म ईमानदारी से निभाये तो अगले जन्म में वह उससे ऊँची जाति में पैदा होगा। कर्म – सिद्धान्त का सामाजिक असर यह होता है कि व्यक्ति इस जन्म में बेहतर व्यवसाय के लिए प्रयास नही करता है। वह अपने जाति धर्म को निभाने में व्यस्त रहता है।

10.6 सारांश

आर्थिक क्षेत्र, अर्थात् उत्पादन, वितरण और उपभोग में धर्म की मूलभूत भूमिका के विषय में आपने पढ़ा। एक विशिष्ट प्रकार की आर्थिक व्यवस्था, अर्थात् पूंजीवाद को चुनकर धर्म और पूंजीवाद के संबंध पर चर्चा की। इस र्चा में मार्क्स और वेबर ने हमारी मदद की। कार्ल मार्क्स ने धर्म को सामाजिक शोषण छुपाने वाले यंत्र के रूप में देखा। वह मानता था कि धर्म काल्पनिक मात्र है, और सामाजिक शोषण के अंत के साथ–साथ धर्म भी समाप्त होगा। मैंक्स वेबर के प्रसिद्ध अध्ययन के बारे में आपने पढ़ा जिसमें उसने प्रोटेस्टैट विचारधारा और पूंजीवादी मनोवृत्ति के संबंध को देखा।

आपने देखा कि किस प्रकार कैल्विन के नये विचारों ने पूंजीवादी मनोवृत्ति को प्रोत्साहित किया। प्रोटेस्टैटवाद के इस अध्ययन द्वारा वेबर समझा कि विचार और विकास किस प्रकार एक दूसरे से जुड़े हुए है।

10.7 शब्दावली

समाजवाद : एक सामाजिक व्यवस्था जिसमें निजी संपत्ति निशिद्ध हो।

पंथ : एक धार्मिक समूह जो धार्मिक विचारों/ग्रंथों पर नया प्रकाश डालता है।

मोक्ष : जीवन के कष्ट से मुक्ति।

तर्कसंगतिकरण : विचारों में जादूई तत्वों को हटाकर उन्हें एकरूप और व्यवस्थित बनाना।

प्यूरिटन : प्रोटेस्टैट पंथ का कट्टर अनुयायी

सामन्तवाद : एक आर्थिक प्रणाली जिसमें श्रमिक मालिक/स्वामी के अधीन है और उत्पादन केवल पेट पालने के लिये किया जाता है।

पूँजीवाद : एक आर्थिक प्रणाली जिसमें स्वतंत्र श्रमिकों को श्रम देकर उनकी उत्पादकता को यंत्रों की सहायता से बढ़ाया जाता है। बाजार में उत्पादन की बिक्री कर मुनाफा बनाया जाता है।

अदिसंरचना और अदोसंरचना:(नींव/आधार) मार्क्स ने किसी संस्थान की तुलना करने के लिए एक मानक या नमूने का प्रयोग किया है जिसके माध्यम से उसका महत्व दर्शाया जाता है। सामान्यता इसका आधार 'स्थापना' से होता है।

अलगाव : एक प्रक्रिया जिससे व्यक्ति अपने श्रम के फल के अधीन हो जाता है।

तप या तपस्या : अत्यधिक स्वयं नियंत्रण या त्याग या एकांकी जीवन चर्चा।

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- गिडन्स, ऍथोनी (1985) *''कैपिटलिज्य एण्ड मॉडर्न सोशल थियोरी''* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस
- राबर्ट्सन, रोलंड (1987) *''ईकनामिक्स एण्ड रिलिजन''* ईलियाड, एम (संपादक) इनसायक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन, न्यूयार्क : मैकमिलन, खंड 6, पृष्ठ–1 से 6
- मार्क्स के और एन्जल्स, एफ (1976) *''ऑन रिलिजन मास्को''* : प्रोग्रेस
- सिंगर, मिल्टन एल0 आल0 (संपादक) (1975) *ट्रेडिशनल इंडिया : स्ट्रक्चर एण्ड चेंज''* जैपूर : रावत
- – यू0जी0एस0वाई–05, समाज और धर्म इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

इकाई–11
धर्म और राजनीति/राज्य

इकाई का रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 राजनीति एवं धर्म का अर्थ

11.3.1 धर्म का अवधारणा

11.3.2 धर्म का सामाजिक महत्व

11.3.3 राजनीति का अवधारणा

11.4 राज्य की अवधारणा और धर्म निरपेक्षीकरण की प्रक्रिया

11.4.1 राज्य का अर्थ

11.4.2 धर्म निरपेक्षीकरण

11.5 राजनीतिक की प्रकृति

11.6 समाज की प्रकृति

11.6.1 एकरूपता एवं अनेकरूपता

11.6.2 धार्मिक समूह और समाज के अन्य विभाजन

11.6.3 धर्म और धर्मों की प्रकृति

11.6.4 ऐतिहासिक प्रक्रिया

11.8 सारांश

11.9 शब्दावली

11.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप :

- धर्म और राजनीति के सम्बन्ध जान सकेंगे;
- धर्म निरपेक्ष राज्य के उदय के विषय जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- राजनीति की प्रकृति का विश्लेषण कर सकेंगे;

11.2 प्रस्तावना

इस इकाई में हम धर्म और राजनीति के बीच संबंध की चर्चा करेंगे जो राजनीतिकरण अधिकार रखने वाला कारक है।

इस अन्तरसंबंध को स्पष्ट करने के लिए हम पहले आपको धर्म और राजनीति की समझ विकसित कर सकेंगे। फिर हम राज्य की अवधारणा और धर्म निरपेक्षीकरण की प्रक्रिया की बात करेंगे जिसने आज के भारत राज्य की प्रकृति को आकार दिया।

इसके बाद हम राजनीति की प्रकृति और धर्म और राजनीति के बीच संबंध को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों की चर्चा करेंगे।

11.3 राजनीति एवं धर्म का अर्थ

इस भाग में हम धर्म और राजनीति के अर्थ को समझने का प्रयास करेंगे। इस प्रक्रिया में यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि धर्म और राजनीति केवल धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है।

धर्म समूह की पहचान की एक प्रभावशाली शक्ति है। ये समूह किसी भी राजनीतिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग है।

11.3.1 धर्म की अवधारणा

हमारे सबके अपने–अपने सवाल है कि जीवन का अर्थ क्या है, संसार में हमारा स्थान क्या है और क्या ऐसी कोई दैवीय शक्ति है जो हमारे जीवन में घटने वाली घटनाओं को नियंत्रित करती है और हम अपने कर्मों के लिए मार्गदर्शन चाहते है। इस तरह के सवालों का जवाब देने के सिसिले में जिन विभिन्न विश्वास या मतों और रीतियों का जन्म होता है वे विभिन्न रूप धारण कर लेती हैं। इस तरह कुछ लोग तो अदृष्य शक्ति में विश्वास करने लगते है और कुछ पेड़ों और पशुओं को पवित्र मानते है। इस बुनियादी सवाल का जवाब देने का प्रयास करने वाले विश्वास और रीतियां अनिश्चितता की स्थितियों में सांत्वना की स्रोत होती है। यह सामाजिक व्यवस्था का आधार होता है। मिलजुल कर माने जाने वाले इन्हीं विश्वासों और रीतियों के तंत्र को धर्म कहते है। इस तरह धर्म को किसी पवित्र सत्ता पर ध्यान केंद्रित करने वाले सहभाजित और स्थिर विश्वासों, प्रतीकों और संस्कारों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। हमारी परिभाषा इस बात पर भी जोर देती है कि धर्म सहभाजित होता है, अर्थात् किसी एक व्यक्ति की विश्वास पद्धति या किसी एक व्यक्ति के जीवन दर्शन को धर्म नहीं माना जा सकता, क्योंकि उसमें दूसरों की समभागिता नहीं होती और अंत में धर्म किसी पवित्र सत्ता पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। इमाइल दुर्खाइम ने इस पवित्र सत्ता को एक ऐसी आदर्श और दैवीय सत्ता के रूप यह पवित्र सत्ता पशुओं या मनुष्यों में, प्राकृतिक या कृत्रिम वस्तुओं में वास कर सकती है। विभिन्न धर्मों में पवित्र सत्ता के प्रति अलग–अलग विश्वास होता है।

11.3.2 धर्म का सामाजिक महत्व

हमारा ध्येय तो धर्म के सामाजिक महत्व और विभिन्न संस्थाओं के साथ इसके संबंध को समझना है। समाजशास्त्रीय धर्म को एक ऐसी संस्था के रूप में लेते है जो समाज का निर्माण करने वाली संस्थाओं की जटिल संजाल का एक अंग है। धर्म का एक महत्वपूर्ण परिणाम विश्वासियों के बीच संबंध को मजबूत बनाना है। कुछ आलोचकों का मानना है कि कभी–कभी धर्म पवित्र सत्ता से संबंधित विश्वास और रीतियों के स्रोत से अधिक सामाजिक पहचान के स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण हो जाता है। अनेक लोग अपने विश्वास के कारण नहीं बल्कि समाज में स्थान पाने के उद्देश्य से धर्म में हिस्सा लेते हैं। इसके परिणामस्वरूप अक्सर यह देखने को मिलता है कि गिरजाघर, मंदिर, मस्जिद और यहूदी उपासनाघर सामाजिक केंद्र का रूप में लेते है। धर्म ही वह बिंदु है जहाँ विभिन्न समूह एकजुट होकर किसी उद्देश्य के लिए लाभवंद है।

एक ही समाज में कई धर्म होने से उनमें टकराव भी हो सकता है। हम सभी जानते है कि मनुष्य जाति के इतिहास में धार्मिक समूहों का कितना दमन हुआ है। धर्म के नाम पर लड़ी गई लड़ाईयों ने पूर्व और पश्चिम दोनों को नष्ट किया है। हाँ, अक्सर अर्थ और राजनीति भी लड़ाइयों के प्रमुख कारण रहे है। ईसाइयों ने मुसलमानों से लड़ाई लड़ी तो कैथोलिक अनुयायिों ने प्रोटेस्टैट संप्रदाय के लोगों से लड़ाई लड़ी। भारत में ही हमने मुसलमानों और हिंदूओं में विभाजन के समय हुए झगड़ों में लाखों को शरणार्थी होते देखा है। मध्य पूर्व में वर्षों से यहूदियों और अरबों ने खूनी लड़ाइयॉ लड़ी है। हमें यह नही भूलना चाहिए कि ये लड़ाइयॉ जितनी राजनीतिक थीं उतनी ही धार्मिक भी थी।

11.3.3 राजनीति की अवधारणा

राजनीति और राजनीतिक प्रक्रिया को विभिन्न समयों में अलग–अलग तरीके से परिभाषित किया गया है। प्रस्तुत विषय के संदर्भ में राजनीति के अर्थ के दो पहलुओं की चर्चा करना उपयोगी होगा। इनमें से एक परिभाषा के अनुसार (1) टकराव (या संघर्ष) और एकीकरण की दो विरोधी शक्तियॉ राजनीति की प्रकृति को तय करती है। राजनीति का संबंध ऐसे ही टकरावों से होता है। टकराव अनिवार्य तो होते है, लेकिन समाज में वे ध्येय या आदर्श कभी नहीं हो सकते। टकरावों का समाधान और समाज का एकीकरण और सहयोग ही तमाम समाजों का आदर्श होता है। टकराव के प्रत्येक विश्लेषण का अंत उनके समाधार सुझाने में होता है। किसी अभिन्न और एकजुट समाज की दिशा में होने वाला कोई भी अभियान उतना तो अनिवार्य होता है जितना टकरावों या मतभेदों का उदय स्थितियों के बदलने के साथ कुछ टकराव तो कम हो जाते हैं, कुछ बने रहते हैं, कुछ नियंत्रित हो जाते हैं और कुछ नए टकराव पैदा हो जाते है।

सामाजिक संस्थाऍ टकराव और एकीकरण दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है और वे राजनीति और राजनीतिक प्रक्रिया से जुड़ी है। ये संस्थाऍ, उनसे जुड़े विचार और मुद्दे अक्सर व्यक्तियों की पहचान के आधार का निर्माण करते हैं और उसकी परिणति टकराव की

स्थितियों में होती है। साथ ही साथ सामाजिक संस्थाएँ खुद संस्थाओं की भीतर और उ नके बीच की एकता और एकीकरण की स्थिति बनाती हैं। इन प्रतिस्पर्धी स्थितियों में प्रत्येक व्यक्ति के भिन्न हित और पहचान होती है, इन स्थितियों से पैदा होने वाले टकराव का समाधान करने की प्रक्रिया में अति वांछित एकीकरण या एकता की स्थिति बनती है और इसी से राजनीति आकार लेती है।

राजनीति को समझने का दूसरा पहलू है वितरणकारी दुष्टिकोण। यह हैरल्ड डी. लासवेल के लेखन से जुड़ा है। हम सभी जानते है कि समाज में सत्ता और संसाधन के वितरण में अत्याधिक विषमता है। सभी समुदायों या व्यक्तियों को संसाधनों, सामानों और पदों का समान हिस्सा नहीं मिलता। उनमें से कुछ इन अधिकारों और संपदा और संसाधनों से वंचित रह जाते है।

11.4 राज्य की अवधारणा और धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया

अब तक हमने राजनीति के अर्थ की विवेचना अत्यधिक व्यापक और सामान्य अर्थों में की है। अगले अनुच्छेद में हम राज्य शब्द की व्याख्या करेंगे। राज्य समाज में अधिकारों के वितरण से संबंध रखने वाली एक राजनीतिक संस्था है। हम धर्म निरपेक्षीकरण की अवधारणा और प्रक्रिया की चर्चा भी करेंगे, क्योंकि रज्य को आज हम जिस अर्थ में लेते है उसका उदय अधिकार के क्षेत्र को धर्मनिरपेक्ष और धार्मिक क्षेत्र से अलग करने की आवश्यकता से हुआ है।

11.4.1 राज्य की अवधारणा

मैक्स वेबर ने राज्य की परिभाषा एक ऐसे मानव समुदाय के रूप में की है जो किसी क्षेत्र विशेष में शारीरिक शक्ति के वैध उपयोग के एकाधिकार का दावा करता है। इस तरह राज्य सामाजिक नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण माध्यम है, जिसके कार्य हमेशा बल प्रयोग का समर्थन प्राप्त कानूनों के पालन के जरिए होते है।

कामटे और स्पेंसर ने राज्य के उदय को समाजों के बढ़ते आकार और जटिलता का परिणाम माना है।

मानव विज्ञानियों और समाजशास्त्रियों ने साधारणतर समाजों का जो अध्ययन किया उससे समाज की जटिलता और आकार तथा व्यवस्थित राजनीतिक प्राधिकरण या सत्ता के बीच कुछ सह संबंध की बात प्रकाश में आई है। प्रारंभिक समुदायों के बारे में लिखते हुए आर. एच.लोई. ने कहा है कि वे अवश्य ही छोटे–छोटे और समतावादी और 'सगोत्र समूह' के समान रहे होंगे। इस तरह सगोत्रता ने एकता को बनाए रखने में अत्यंत प्रभावी भूमिका निभाई। समाज न्यूनाधिक कम भेदित था, इसलिए धार्मिक संस्थाओं और राजनीतिक संस्थाओं के बीच कोई बहुत बड़ा भेद नहीं किया जाता था। समुदाय का मुखिया धार्मिक प्रमुख भी होता था और राजनीतिक प्रमुख भी। समाज की बढ़ती जटिलता के साथ, धार्मिक और अधार्मिक क्षेत्रों को अलग करने की आवश्यकता महसूस की गई जिससे सत्ता के क्षेत्र को लोकतांत्रिक किया जा सके। यूरोप और विशेषकर इंगलैंड में चर्च और राजा के अधिकार या सत्ता के क्षेत्रों को

वैधानिक रूप से अलग –अलग करने की दिशा में राजनीति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

11.4.2 धर्म निरपेक्षीकरण

समाज में किसी एक धर्म के राजनीतिक और सामाजिक महत्व में आने वाली कमी को धर्म निरपेक्षीकरण माना जाता है। धर्म निरपेक्षीकरण को सामान्यतया आधुनिक और प्रौद्योगिकी की दृष्टि से उन्नत समाजों से जोड़ा जाता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन शब्द 'सेक्युलम' से हुई जिसका अर्थ है 'वर्तमान युग'। अपने सामान्य प्रचलन में धर्म निरपेक्षीकरण का अर्थ एक ऐसी प्रभुत्वशाली सामाजिक प्रक्रिया से लिया जाने लगा जिसमें संसार को एक ऐसी दृष्टि से देखा जाने लगा जो धार्मिक दृष्टि से हटकर थी। संसार का धार्मिक दृष्टिकोण तो विश्वास पर आधारित होता है जिसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता, जबकि वेज्ञानिक दृष्टिकोण तो विश्वास पर आधारित होता है जिसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता, जबकि वैज्ञानिक दृष्टिकोण ज्ञान पर आधारित होता है जिसे प्रत्यक्ष तौर पर प्रमाणित किया जा सकता है। अब यह स्थिति अधिकाधिक बनती जा रही है कि धर्म का हमारे ऊपर प्रभाव कम से कम होता जा रहा है कि क्या धर्म का प्रभाव घटता जा रहा है। फिर भी धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया ने धर्म को नागरिक जीवन से दूर एक अलग और विशिष्ट स्थान दिया है धर्मनिरपेक्षीकरण के राजनीतिक आयाम का बुनियादी अर्थ है राजनीतिक सत्ता का धार्मिक सत्ता से पृथक्करण इस संदर्भ में धर्मनिरपेक्ष राज्य होता है जो किसी एक धर्म का समर्थन नहीं करता है और न ही उसका पक्ष लेता है।

11.5 राजनीतिक की प्रकृति

राजनीतिक की प्रकृति जटिल है और इसके कई पहलू हैं। यह एक समाज में व्यक्तियों और समूहों के बीच शक्ति और संसाधनों के वितरण के साथ–साथ शासन और निर्णय लेने के तरीकों से संबंधित है. राजनीति विभिन्न स्तरों पर मौजूद है, जैसे कि व्यक्तिगत स्तर पर, स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर, और यहां तक कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी

शक्ति और संसाधन: राजनीति में, शक्ति और संसाधनों का वितरण एक महत्वपूर्ण कारक है। राजनीतिक प्रक्रियाएं अक्सर शक्ति के लिए प्रतिस्पर्धा और संसाधनों के नियंत्रण के लिए संघर्ष को दर्शाती हैं.

शासन और निर्णय : राजनीति में शासन और निर्णय लेने के तरीकों का अध्ययन शामिल है। यह विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों, जैसे कि लोकतंत्र, तानाशाही, और अन्य शासन पद्धतियों का अध्ययन करता है.

राजनीतिक विचार और सिद्धांत: राजनीति में, विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं और सिद्धांतों का अध्ययन शामिल है। यह राजनीतिक विचारों के विकास और उनके सामाजिक और राजनीतिक प्रभावों का अध्ययन करता है.

सामाजिक संबंध: राजनीति समाज के भीतर सामाजिक संबंधों को भी प्रभावित करती है। यह विभिन्न समूहों के बीच संबंध, जैसे कि राजनीतिक दल, सामाजिक आंदोलन, और अन्य समूहों को प्रभावित करती है.

अंतर्राष्ट्रीय संबंध: राजनीति अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह विभिन्न देशों के बीच संबंध, जैसे कि राजनयिक संबंध, व्यापार संबंध, और सुरक्षा संबंध को प्रभावित करती है. राजनीति एक गतिशील और जटिल क्षेत्र है। इसमें शक्ति, संसाधन, शासन, निर्णय, राजनीतिक विचार, सामाजिक संबंध और अंतर्राष्ट्रीय संबंध जैसे विभिन्न पहलुओं का अध्ययन शामिल है। राजनीति की प्रकृति को समझने के लिए, हमें इन पहलुओं का गहराई से अध्ययन करना चाहिए और उनकी अंतर्संबंध को समझना चाहिए।

11.6 समाज की प्रकृति

समाज एक लोगों का समूह है जो एक दूसरे के साथ सामाजिक रूप से जुड़कर एक साथ रहते हैं और एक विशिष्ट संस्कृति, रीति–रिवाजों और मूल्यों को साझा करते हैं। समाज की प्रकृति विविध है, जो विभिन्न कारकों जैसे भौगोलिक स्थिति, सामाजिक और आर्थिक स्थिति, राजनीतिक संरचना और सांस्कृतिक मूल्यों से प्रभावित होती है।

सामाजिक संबंध: समाज में लोगों के बीच संबंध, जैसे कि परिवार, मित्र, सहकर्मी और समुदाय के सदस्य, समाज के महत्वपूर्ण पहलू हैं।

सांस्कृतिक विविधता: विभिन्न समाजों में अलग–अलग भाषा, धर्म, रीति–रिवाज और परंपराएं होती हैं, जो उनकी संस्कृति को अद्वितीय बनाती हैं।

सामाजिक संरचना: समाज में व्यक्तियों की स्थिति, जैसे कि सामाजिक वर्ग, लिंग, जाति और उम्र, समाज की संरचना को दर्शाती है।

सामाजिक नियंत्रण: समाज में नियमों, कानूनों और सामाजिक मानदंडों का उपयोग सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने और व्यक्तियों के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।

सामाजिक परिवर्तन: समाज समय के साथ बदलता रहता है, जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारकों से प्रभावित होता है। समाज की एकरूपता एवं अनेकरूपता, आर्थिक प्रस्थिति, प्रजातीयता आदि पर आधारित अन्य वर्गों के साथ धार्मिक समूह किस सीमा तक सह–अस्तित्व में रहते है।

11.6.1 एकरूपता एवं अनेकरूपता

कोई भी समाज इस अर्थ में 'सामासिक' होता है कि उसमें अनेक प्रकार और स्तर के विभाजन होते है धार्मिक, आर्थिक, प्रजातीय, जनजातीय इत्यादि। लेकिन कुछ समाजों में ये

विभाजन या वर्ग अन्य समाजों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होते है। इन विभाजनों के संदर्भ में समाजों को 'एकरूप' और 'अनेकरूप' कहा जाता है। ये विभाजन अनेकयप समाजों में अधिक स्पष्ट होते है। व्यक्तिगत पहचान और समूह संरचना का एक प्रमुख आधार होने के कारण धर्म इन विभाजनों का एक महत्वपूर्ण अंग है। एकरूप समाजों में राजनीति पर धर्म का प्रभाव कम स्पष्ट होता है, लेकिन अनेकरूप समाजों में इस प्रकार का प्रभाव अधिक स्पष्ट होता है। जैसा कि आल्फोर्ड ने कहा है, धर्म और राजनीति का संबंध केवल उन्हीं राष्ट्रों में समस्या बनता है जो धार्मिक दृष्टि से एकरूप नहीं होते।

11.6.2 धार्मिक समूह और समाज के अन्य विभाजन

धर्म और राजनीति के इस संबंध के संदर्भ में दूसरा महत्वपूर्ण कारक है कि वर्ग, प्रजातीयता, अप्रवासी आदि जैसे अन्य सामाजिक विभाजनों के साथ धार्मिक समूह किस सीमा तक सह–अस्तित्व में रहे है। अनुभव सिद्ध अध्ययनों से विभिन्न वर्गों या विभाजनों में इस प्रकार के संबंधों या साहचर्य का संकेत मिलता है। अमरीका के विभिन्न भागों में किए गए अनेक अध्ययनों से निम्न वर्गों में कुछ धार्मिक समूहों के जमाव का पता चला है। इसी तरह, भारत में कुछ धार्मिक अल्पसंख्यक समूह निम्न आर्थिक वर्ग की श्रेणी में आते है। प्रजातीयता और अप्रवास का संबंध जटिल रूप में धर्म और वर्ग से होता है। अमरीकी संस्कृति का लेखा जोखा प्रस्तुत करने वाली चर्चित पुस्तक *बियांड द मोल्टिंग पॉट (1973)* के लेखकों का यह निष्कर्ष था कि कैथोलिक : यहूदी संबंधों की सूख्म जांच से प्रजातीय संबंधों की कुछ प्रवृत्तियॉ सामने आएंगी, वैसे उनमें एक प्रकार के वर्गीय संबंध भी है। इन अमरीकी उदाहरणों का उल्लेख द मोल्टिंग पॉट का प्रतीक बनने वाले समाज में भी विभिन्न विभाजनों या वर्गों का एक दूसरे के साथ सह–अस्तित्व में रहने की मिसाल प्रस्तुत करना है।

11.6.3 धर्म या धर्मों की प्रकृति

तीसरा महत्वपूर्ण कारक है धर्म या धर्मों की प्रकृति, और राजनीति के प्रति उसका रवैया। आर0 आर0 अल्फोर्ड ने अपनी पुस्तक पार्टी ऐंड सोसाइटी में राजनीतिक दलों के ''धार्मिक आकर्षण'' के संदर्भ में एंगलों–अमरीकी देशों और महाद्वीपीय यूरोपीय देशों के बीच भिन्नता की बात की है। आर. आर. आल्फोर्ड ने जिन कारकों को व्याख्या के लिए महत्वपूर्ण पाया उनमें यह भिन्नता भी है कि महाद्वीपीय ''यूरोपीय देश'' प्रमुख रूप से ''प्रोटेस्टैट'' हैं, जबकि ऐंग्लो–अमरीकी अंग्रेजी भाषी देश ''प्रमुख रूप से कैथोलिक'' है। प्रोटेस्टैट संप्रदाय के उदय के इतिहास के कारण चर्च और राज्य पर कहीं अधिक बल है। मैक्स वेबर ने अपनी पुस्तक द प्रोटेस्टैट इथिक ऐंड द स्प्रिट ऑफ कैपिटलिज्म (1930) में धर्म की प्रकृति का संबंध औद्योगीकरण की धर्म–निरपेक्ष शक्तियों के साथ जोड़ा है। कुछ धर्म है जो तमाम सामाजिक प्रक्रियाओं के धर्म की 'अधीनता' में होने में विश्वास करते हैं। उनके लिए 'राजनीति' को 'धर्म' से अलग करना कठिन होता है। अधिक सूक्ष्मता से लें तो, इनके अनुसार 'राजनीति' धर्म के

लिए है। कुछ अन्य धर्म अधि समन्वयकारी हैं और तुलनात्मक रूप से उनके संगठन में खुलापन है। ये धर्म समाज की अन्य प्रक्रियाओं के प्रति अधिक सहिष्णु होते हैं और वहॉ राजनीति और धर्म के अलगाव के लिए अधिक अनुकूल स्थितियां होती है।

चौथा कारक है ऐतिहासिक प्रक्रिया। यह कारक महत्वपूर्ण भी है और जटिल भी। यह दो स्तरों पर कार्य करता है। 1. धर्म का उदय विभिन्न चरणों में विभिन्न मार्गों के जरिए हुआ है, जिससे उनका एक अलग स्पष्ट चरित्र बना है। 2. धर्म और अन्य सामाजिक समूहों और प्रक्रियाओं, विशेषकर राजनीतिक सत्ता के बीच संबंध की ऐतिहासिक प्रक्रिया ने समाज में धर्म के वास्तविक स्थान को प्रभावित किया है। ये दो ऐतिहासिक शक्तियां एक दूसरे से गहरे रूप से जुड़ी है और उनकी अन्योन्याक्रिया में जटिलता है। धर्म और राजनीति के संबंध के संदर्भ में ऐंग्लो–अमरीकी आक्सर महाद्वीपीय देशों के उपर्युक्त उदाहरण इस अंतर को दिलचस्प बनाते है। ऐतिहासिक कारणों की व्याख्या करते हुए आर. आर. अल्फोर्ड कहते है कि फ्रांस, इटली और बेल्जियम जैसे महाद्वीपीय देशों में जहॉ धार्मिक पार्टियां मजबूत है, धार्मिक स्वतंत्रता साथ–साथ अर्जित की गई और वह राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ संबंद्ध हुई। उसका परिणाम यह हुआ कि आज भी धर्म, वर्ग और राजनीति में गहरा संबंध है। दूसरी ओर, ब्रिटेन में धर्म और राजनीति के मुद्दे अलग–अलग उभरे और उनका हल भी अलग–अलग हुआ। इसके परिणामस्वरूप न केवल चर्च और राज्य कानूनी तौर पर पृथक हो गए, बल्कि राजनीतिक दलों का गठन भी कभी धार्मिक आधार पर नही हुआ। ऐतिहासिक प्रक्रिया को और आगे स्पष्ट करते हुए, अल्फोर्ड कहते है, ''इंगैंड में 1500 के दाक के सुधार आंदोलन की विशेषताओं ने, महाद्वीप के देशों में हुए सुधार आंदोलन की विशेषताओं के विपरीत ब्रिटिश संस्कृति की धार्मिक सामाजिकता की वैधता और चर्चा और राज्य के अत्यधिक अलगाव की स्थिति में योगदान किया होगा।'' ऐतिहासिक प्रक्रिया की विशेषताओं के कारण, कुछ धमों से संबंधित सामाजिक समूहों में स्पष्ट राजनीतिक व्यवहार देखने को मिलते है।

11.8 सारांश

इकाई की शुरूआत हमने धर्म और राजनीति के बढ़ते अंतसंबंध पर चर्चा के साथ की। इस समस्या को समझने के लिए हमने धर्म और राजनीति पर विस्तार से चर्चा की है। हमने यह भी चर्चा की कि किस प्रकार राजनीतिक प्राधिकरण और धार्मिक प्राधिकरण के बीच सत्ता के लिए होने वाले टकराव से धर्मनिरपेक्ष राज्य का उदय हुआ। राजनीति की प्रक्रिया का भी अध्ययन किया जिसमें विभिन्न समूहों के बीच सत्ता का संघर्ष अनिवार्य रूप से समाहित है। धर्म समूह निर्माण के लिए भी महत्वपूर्ण आधार तैयार करता है, और यह भी राजनीति को प्रभावित करने वाला एक कारक है।

11.9 शब्दावली

सत्ता : राजनीतिक प्राधिकरण या अधिकार जिससे किसी को जनता को आदेश

देने या प्रभावित करने का अधिकार मिल जाता है।

एकीकरण : एक समाष्टि का रूप लेने की क्रिया या प्रक्रिया

संघर्ष / टकराव : दो व्यक्ति समूहों के बीच संघर्ष या प्रतियोगिता

11.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- कांकलिन, जॉई ई., 1984, *इंट्रोडक्शन टु सोशियालॉजी,* मैकमिलन : न्यूयार्क
- जोया हसन, एस. एन. झा एवं रशीदुद्दीन खां (संपादकगण), 1989 *द स्टेअ, पॉलिटिकल प्रॉसेस ऐड आइडेंडिटी : रिफ्लेक्शंस ऑन मॉडर्न इंडिया,* सेज : नई दिल्ली
- यू0जी0एस0वाई–05, समाज और धर्म इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

इकाई–12

धार्मिक संगठन : मत, पंथ और सम्प्रदाय

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 मत का अर्थ एवं विशेषताएँ

12.3 पंथ का अर्थ एवं विशेषताएँ

12.4 सम्प्रदाय का अर्थ एवं विशेषताएँ

12.5 सारांश

12.6 शब्दावली

12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.8 बोध प्रश्न

12.0 उद्देश्य

इस इकाई मे आप अध्ययन करेगे –

1 मत की अवधारणा एवं विचार को आप समझ सकेगे ।

2 पंथ की अवधारणा एवं विशेषता को आप समझ सकेगे ।

3 पंथ और संप्रदाय की को आप जान सकेगे ।

12.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम की सर्वप्रथम इकाई में आपका स्वागत है। इस इकाई में धर्म एवं धर्म से जुड़े अनेक समानार्थी पहलुओं को विस्तार से समझाने का प्रयास किया गया है। प्रायः मत, पंथ, संप्रदाय बोलचाल की भाषा में काफी समानार्थी होते हैं या फिर कई बार इन शब्दों का प्रयोग करते समय इनकी वास्तविक परिभाषा एवं अर्थों पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

इस इकाई में मत, पंथ एवं संप्रदाय को समझाने हेतु सामान्य भाषा का प्रयोग करते हुए इनकी विशेषताओं को समझाने का प्रयास किया गया है। यथासंभव इस हेतु कुछ उदाहरणों को इसमें लिखा गया है।

12.2 मत का अर्थ एवं विशेषताएँ

अंग्रेजी शब्द रिलीजन संभवतः लेटिन शब्द लिजोर से बना है, जिसका अर्थ है, आपस

में बाँधना या एक सूत्र में पिरोना। धर्म अथवा मत को उसके समाजशास्त्रीय उद्ष्यों में परिभाषित कर पाना एक अत्यंत ही दुरुह कार्य है।

धर्म या मत एक सामाजिक संस्था है तथा प्रकार्यात्मक दृष्टि से समाज के किसी सामूहिक विश्वास के आधार पर यह यह सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने का महत्वपूर्ण कार्य संपादित करती है। अनेक समाजशास्त्री किसी मत को तात्विक एवं प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण से परिभाषित करते है। तात्विक विचारधाराएँ धर्म के 'क्या' स्वरुप पर अधिक विचार करती है जबकि प्रकार्यात्मक विचारधाराएँ धर्म की समाज में भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हुए उसे परिभाषित करती हैं।

इमाइल दुर्खीम के अनुसार–धर्म पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वासों तथा कर्मकांडों की एक संगठित व्यवस्था है जो उन व्यक्तियों को एक एकल सामाजिक– नैतिक समुदाय में बाँधता है जो इसका अनुसरण करते हैं।

धर्म एक समाजशास्त्रीय घटना के साथ–साथ एक व्यक्तिगत अनुभव भी है।

मार्क्स के अनुसार धर्म व्यक्ति के लिए अफीम की तरह कार्य करता है, लेकिन आर्नोल्ड ग्रीन, धर्म को मनुष्य की पीड़ाओं और कश्टों को एक प्रकार की बौद्धिकता प्रदान करने और उन्हें सहने योग्य बनाने वाला मानते हैं।

धर्म के प्रति अलग–अलग समाजशास्त्रीय चिंतन से यही निष्कर्ष निकलता है कि धर्म का सबसे बड़ा योगदान सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक नियंत्रण को मजबूत करने या बनाए रखने का है।

धर्म काफी लंबे अंतराल से अध्ययन और चिंतन का विषय रहा है। समाजशास्त्र की उत्पत्ति के समय से ही धर्म के वैज्ञानिक अध्ययन की चेष्ठा की गई है। एक संस्था के रुप में सामाजिक संरचना में धर्म की प्रमुख भूमिका है। धर्म अपने अनुयायियों को विश्वास, कार्य पद्धति और आपदकाल में धीरज प्रदान करता है। अतः धर्म का विशेष समाजशास्त्रीय महत्व है। धर्म मनुष्य और सृष्टि के अस्तित्व के रहस्यों से संबंधित है। सदियों से मनुष्य को ऐसे प्रश्न उद्वेलित करते रहे है कि संसार कैसे और क्यों बना ? मृत्यु क्या है ? विभिन्न धर्मो ने अपने ढंग से इन प्रश्नों का उत्तर दिया, जो कि सभी ज्ञात समाजों में विद्यमान है। हालांकि धार्मिक विश्वास और व्यवहार एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में बदलते रहते हैं। सभी धर्मों की समान विशेषता है –

1. प्रतिकों का समुच्चय, श्रद्धा या सम्मान की भावनाएँ
2. अनुष्ठान या समारोह
3. विश्वासकर्ताओं का एक समुदाय

अनुष्ठानिक कार्यो में प्रार्थना करना, गुणगान करना, भजन गाना, विशेष प्रकार का भोजन करना, कुछ दिनों का उपवास रखना इसी प्रकार के अन्य कार्य शामिल होते हैं। धर्म

एक पवित्र क्षेत्र है इस बात पर विचार करें कि विभिन्न धर्मों के सदस्य पवित्र क्षेत्र में प्रवेश करने के पूर्व क्या करते हैं। उदाहरण के लिए हम देखते है कि विभिन्न धर्मो के सदस्य सिर को ढकते है या नहीं ढकते, जूते उतारते हैं या विशेष प्रकार के वस्त्र धारण करते हैं, आदि। इन सबमें जो बात समान है वह है श्रद्धा की भावना, पवित्र स्थानों की पहचान और उनके प्रति सम्मान की भावना। सामान्य रुप से धर्म मानवीय जीवन के अज्ञात एवं अज्ञेय पक्षों जैसे जीवन, मृत्यु और उसके अस्तित्व के रहस्यों को जानने तथा उसके साथ व्यवहार करने का एक तरीका है। यही नहीं, धर्म नैतिक निर्णयों को लेने की प्रक्रिया में उत्पन्न कठिन असमंजस की स्थिति में उसकी सहायता भी करता है। इमाइल दुर्खीम का अनुसरण करने वाले धर्म के समाजशास्त्री उस पवित्र क्षेत्र को समझने में रुचि रखते है जिसे प्रत्येक समाज सांसारिक चीजों से भिन्न रहता है। अधिकतर मामलों में पवित्रता में अलौकिकता का तत्व होता है। अधिकाशंतः किसी वृक्ष या मंदिर की पवित्रता के साथ यह विश्वास जुड़ा होता है कि इसके पीछे कोई आलौकिक शक्ति है इसलिए यह पवित्र है। तथापि यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि कुछ धर्मों, जैसे आरंभिक बौद्ध धर्म और कन्फ्यूशियसवाद में आलौकिकता की कोई संकल्पना नहीं थी लेकिन जिन व्यक्तियों और चीजों को वे पवित्र मानते थे उनके लिए उनमें पर्याप्त श्रद्धा थी। आधुनिक पश्चिम में धर्म निरपेक्षीकरण का मतलब ऐसी प्रकिया है जिसमें धर्म के प्रभाव में कमी आती है। आधुनिकीकरण के सिद्धांत के सभी प्रतिपादक विचारकों की मान्यता रही है कि आधुनिक समाज ज्यादा से ज्यादा धर्मनिरपेक्ष होता है। हिन्दू धर्म में दो प्रमुख मत माने गए है–

1. शैवमत 2. वैश्णव मत

कुछ मत निम्नानुसार है

राधास्वामी मतः– 19 वीं शताब्दी के धार्मिक आंदोलन में राधास्वामी सत्संग का भी योगदान रहा है। इस मत के प्रवर्तक राधास्वामी थे। इस मत में गुरु का महत्व सबसे अधिक माना जाता था। मोक्ष की प्राप्ति गुरु की सहायता से ही हो सकती है।

सूफी मतः– 19 वीं शताब्दी के अंत तक मुसलमानों का साम्राज्य स्थापित हो चुका था। साम्राज्य स्थापना के लिए अब उनमें वैसा जोष नहीं रहा जो पहले था, क्योंकि अब्बासी खलिफाओं का पतन हो चुका था। इसका प्रभाव धर्म पर पड़ा।

डॉ. ताराचंद के अनुसार सूफी मत के उत्थान के 5 कारण रहे हैं।

1. कुरान और मोहम्मद साहब।
2. ईसाई मत ।
3. अभिनव अफलातूनी विचार।
4. हिंदुत्व और बौध्द मत।
5. इरान का जरथुस्त्र मत।

12.3 पंथ का अर्थ एवं विशेषताएँ

संप्रदाय का मजबूत गठबंधन या सदस्यों की संप्रदाय विशेष के प्रति एकता कालांतर में अनेक कारणों से क्षीण होने लगती है तथा संप्रदाय की प्रतिरोधी भावना कमजोर पड़ने लगती है परिणामस्वरुप संप्रदाय के विशिष्ट चालक तत्व समाप्त हो सकते हैं। तब संप्रदाय धीरे–धीरे किसी पंथ में परिवर्तित हो जाता है। पंथों, संप्रदाय तथा धर्मों की बीच सामजंस्य तथा विनिमय की एक निरंतर प्रक्रिया चलती रहती है। यही कारण है कि हमें अनेक संप्रदायों तथा पंथों के उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। भारत में अनेक धर्मों ने एक दूसरे को प्रभावित किया हैं। कबीर पंथ इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण है। सामाजिक संरचना धार्मिक संपर्क, रुढ़िवादिता, नवीन विचार तथा ईश्वर के प्रति मानवीय दृष्टिकोण ने अनेक पंथों को जन्म दिया है।

पंथ (Cult) एक ऐसा छोटा समूह है जिसकी अपनी विशेष और अक्सर चरम विचारधारा होती है, जो समाज के मुख्य धार्मिक या सांस्कृतिक रुझानों से अलग होती है. पंथ में एक मजबूत नेता होता है, जिसे सदस्य अत्यधिक सम्मान देते हैं और जिसका पालन करते हैं ।

पंथ की विशेषताएं:

असामान्य या चरम विचारधारा: पंथ में सदस्यों की मान्यताएँ अक्सर सामान्य धार्मिक या सामाजिक मान्यताओं से अलग होती हैं.

मजबूत नेता: पंथ में एक करिश्माई नेता होता है जो सदस्यों को नियंत्रित करता है और उनकी मान्यताओं, व्यवहारों और रीति–रिवाजों को निर्धारित करता है

दुनिया से अलग–थलग: पंथ सदस्य अक्सर दुनिया से अलग–थलग रहते हैं और पंथ के नेता के निर्देशों का पालन करते हैं.

अत्यधिक समर्पण: सदस्य पंथ, उसके नेता और उसकी विचारधारा के प्रति अत्यधिक समर्पण दिखाते हैं.

समूह चिंतन: पंथ में समूह चिंतन होता है, जहाँ सदस्यों को एक विशेष तरीके से सोचने और व्यवहार करने के लिए दबाव डाला जाता है.

पंथ–विरोधी आंदोलन: कुछ समूहों को पंथ के रूप में लेबल किया जाता है, क्योंकि उनके अपरंपरागत विश्वासों या प्रथाओं को समाज द्वारा अस्वीकार किया जाता है.

पंथ का अर्थ और अर्थ कई स्रोतों में अलग–अलग होता है, लेकिन आम तौर पर यह एक ऐसे समूह को संदर्भित करता है जिसकी एक विशेष विचारधारा होती है, जो समाज के मुख्य धार्मिक या सांस्कृतिक रुझानों से अलग होती है

12.4 सम्प्रदाय का अर्थ एवं विशेषताएँ

संप्रदाय को एक ऐसा धार्मिक संगठन माना गया है जो किसी भी धर्म में व्याप्त एवं प्रचलित रुढ़ियों, रीति–रिवाज, परम्पराओं के प्रति विद्रोह की भावना रखता है।

इस तरह पहले से मान्य विश्वासों एवं नियमों से अलग हटकर एक नई मानसिकता का विकास होता है, प्रभावित सदस्य इस नई मानसिकता के प्रभाव में आकर वैसा ही व्यवहार प्रदर्षित करते हैं। कई बार इसमें किसी देवी–देवता का आदेश, किसी विशिष्ट व्यवहार का प्रतिपादन, सोच आदि भी सम्मिलित होती है। इस तरह किसी भी धर्म विशेष के अंतर्गत अनेक संप्रदायों की उत्पत्ति हो सकती है।

यदि संप्रदाय को धर्म के साथ तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो किसी व्यक्ति के जन्म से ही अनिर्वायतः उसकी धार्मिक पहचान एवं सदस्यता स्पष्ट हो जाती है जबकि संप्रदाय मनुष्य के जीवन में होनी वाली एक स्वैच्छिक स्थिति है तथा इसकी सदस्यता पूर्णतः ऐच्छिक है।

संप्रदाय का कोई व्यक्ति विशेष प्रवर्त्तक होता है, उसके निश्चित पवित्र ग्रन्थ होते हैं, जो उस आदि प्रवर्त्तक की कृति हैं अथवा जिसको आदि प्रवर्त्तक की वाणियों या संवादों का संग्रह समझा जाता है। यह ग्रंथ पवित्र और प्रमाणिक माने जाते हैं । ऐसा समझा जाता है कि सब बातों का अन्तिम उत्तर इनमें दिया गया है। जो उस संप्रदाय के मानने वाले हैं वह अपने–अपने पक्ष का समर्थन उसी ग्रन्थ का उदाहरण देकर करते हैं कभी–कभी संप्रदाय के भीतर ही अनेक वाद प्रचलित हो जाते हैं, किन्तु इनमें से एक भी ऐसा नहीं है जो ग्रंथ की प्रमाणिकता को स्वीकार न करता हो। अपने अपने पवित्र ग्रंथ के अतिरिक्त वह आदि प्रवर्त्तक को पैगम्बर या गुरु मानते हैं। पैगम्बर या गुरु का जीवन–चरित्र अनुयायियों के लिए पथ प्रदर्शक होता है। साथ–साथ प्रत्येक के कुछ संस्कार और अनुश्ठान होते हैं, जो उसको अन्य संप्रदायों से व्यावृत्त करते हैं। इन्ही के आधार पर हम बता सकते हैं कि अमुक सम्प्रदाय के यह लक्षण हैं। उदाहरण के लिए, हम कह सकते हैं कि इस्लाम का मानने वाला वह है जो एक ईश्वर में विश्वास करता है और मुहम्मद साहब को अपना पैगम्बर मानता है तथा कुरान और हदीस को प्रामाणिक मानता है। नमाज, जकात, रोजा आदि उसके अनुश्ठान और धार्मिक कृत्य हैं।

संप्रदाय पूरी तरह सहयोग भाई–चारे तथा सदस्यों के बीच समान उद्देष्यों एवं समानता पर निर्भर करता है। सदस्यों के मन में अपने संप्रदाय के प्रति एक विशिष्ट एवं श्रेष्ठता का पूजा पद्धतियों, ईश्वर आदि आधारों पर कई संप्रदाय अस्तित्व में आए। ईसाइयों में कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेंट मुसलमानों में शिया, सुन्नी जैन धर्म में ष्वेतांबर एवं दिगंबर तथा बौद्धों में हीनयान तथा महायान इसके उदाहरण हैं।

12.5 सारांश

व्यक्ति के जीवन में धर्म का एक मुख्य स्थान है तथा मनुष्य अपनी धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति इसके माध्यम से करता है। धर्म की उत्पत्ति से लेकर उसके विकासक्रम में धर्म के कई आयाम दिखाई देते हैं। प्रचलित धर्मों में कई कमियाँ, नई षाखाएँ, विचारधाराएँ तथा उनमें परिवर्तन होते रहते हैं। इस तरह विकास की अनेक स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जो अध्ययन का विशय बन जाती हैं।

12.6 शब्दावली

आस्था (Faith)– माने हुए तथ्य के प्रति विश्वास की एक समस्त पद्धति।

संप्रदाय/पंथ (Sect)– विशिष्ठ विश्वासों, परंपराओं, मान्यताओं अथवा संत–महात्माओं के साथ अपनी एक अलग विशिष्ठ पहचान बनाने वाले।

12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

पारसंस टालकट : द सोषल सिस्टम, न्यूयार्क, 1951

दुर्खीम इमाइल : एलेमेंटरी फॉर्म्स ऑफ रिलिजियस लाइफ, न्यूयार्क, 1912

12.8 बोध प्रश्न

- पंथ को दो पंक्तियों में समझाइये ?

  _____

  _____

- संप्रदाय को समझाइये ? (25 शब्दों में)

  _____

  _____

- मत का अर्थ स्पष्ट कीजिए?

  _____

  _____

- धर्म क्या है ?

  (अ) विश्वास (ब) वस्तु (स) ज्ञान (द) एक पुस्तक

  उत्तर – (अ) विश्वास

- हिन्दू धर्म में कितने प्रमुख मत हैं?

  (अ) चार (ब) दो (स) आठ (द) बारह

  उत्तर – (ब) दो

इकाई–13

धार्मिक विशेषज्ञ : ओझा, पुरोहित और पैगम्बर

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 ओझा एवं कार्य

13.3 पुरोहित एवं कार्य

13.4 पैगंबर की विशेषताएँ

13.5 सारांश

13.6 शब्दावली

13.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.8 बोध प्रश्न

13.0 उद्देश्य

इस इकाई में धर्म से संबंधित विशिष्ठ व्यक्तियों के बारे में समझाया गया है । ओझा, पुरोहित या अन्य व्यक्ति की विशिष्ठताओं एवं उनके कार्यों को यहाँ स्पष्ट किया गया है ।

इस इकाई मे आप अध्ययन करेगे –

1 व्यक्ति के जीवन में ओझा के कार्य को आप समझ सकेगे ।

2 पुरोहित के कार्य को आप समझ सकेगे।

3 पैगंबर की विशेषताएँ को आप समझ सकेगे

13.1 प्रस्तावना

ऐसा माना जाता है कि किसी भी धर्म में कुछ व्यक्तियों को दैवीय शक्तियाँ प्राप्त होती हैं । ऐसे व्यक्तियों को समाज में अत्यन्त ही सम्मानजनक स्थान दिया जाता है । प्रायः ऐसे व्यक्ति पूजा–अर्चना, अनेक धार्मिक क्रियाकलाप तथा अन्य सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों को सम्पन्न करने की विशिष्ठ योग्यताएँ रखते हैं । अतः ये समाज के लिए अपरिहार्य है ।

प्रत्येक संप्रदाय में एक धर्म विशेषज्ञ प्रर्वतक होता है जिसमें उनके कुछ निश्चित पवित्र ग्रंथ होते है जो उस आदि प्रवर्त्तक की कृति है यह ग्रंथ पवित्र और प्रमाणिक माने जाते हैं ऐसा समझा जाता है कि सब बातों का अन्तिम उत्तर इनमें दिया है, जो उस संप्रदाय के मानने वाले है वह अपने–अपने पवित्र ग्रंथ के अतिरिक्त वह आदि प्रवर्त्तक को अपना पैगम्बर

या गुरु मानते है, पैगम्बर या गुरु का जीवन चरित्र अनुयायियों के लिए पथ प्रदर्शक होता है उदाहरण के लिए हम कह सकते है कि हिन्दुओं में संत पुरोहित, मुस्लिम समाज में पैगम्बर, सिक्खों में गुरुओं को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है उन्हें ईश्वर का दूसरा रुप कहा जाता है और उनके द्वारा कहे गये वचनों को ईश्वर के वचन मानकर आज भी उनका पालन किया जाता है।

13.2 ओझा एवं कार्य

''ओझा'' शब्द का उद्भव संस्कृत से हुआ है। ओझा के अनेक अर्थों के अतिरिक्त एक अर्थ यह भी है कि ''वह जो पृथ्वी की आत्माओं को नियंत्रित करता है।''

ओझा शब्द का अर्थ अलग–अलग context में अलग–अलग हो सकता है। कुछ धर्मों में, ओझा एक व्यक्ति होता है जो शैतान को बाहर निकालने या राक्षसों से छुटकारा दिलाने में मदद करता है, जैसे कि किसी व्यक्ति या वस्तु को अपने वश में कर लिया है। कुछ संस्कृतियों में, ओझा एक पारंपरिक चिकित्सक या जादूगर होता है, जो बीमारियों का इलाज करता है या अलौकिक शक्तियों का उपयोग करता है.

ओझा धार्मिक अनुष्ठानों का संचालन करते हैं, जिसमें पूजा, हवन, और अन्य कर्मकांड शामिल होते हैं.

शैतान या राक्षसों से छुटकारा.- कुछ ओझा शैतान या राक्षसों से छुटकारा दिलाने के लिए अनुष्ठान करते हैं, जो किसी व्यक्ति या वस्तु को अपने वश में कर लेते हैं.

चिकित्सा- कुछ ओझा बीमारियों का इलाज करते हैं, विशेष रूप से जहां आधुनिक चिकित्सा उपलब्ध नहीं होती है, जैसे कि भारत में पारंपरिक रूप से सांप के काटे का इलाज.

पारंपरिक रीति–रिवाजों का पालन- ओझा पारंपरिक रीति–रिवाजों का पालन करते हैं और उन्हें आगे बढ़ाते हैं, और अक्सर सामाजिक संरचना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होते हैं.

अंधविश्वास और हानिकारक प्रथाओं को फैलाना- कुछ ओझा अंधविश्वास और हानिकारक प्रथाओं को फैलाने के लिए भी जिम्मेदार होते हैं, जो उनकी नकारात्मक भूमिका का हिस्सा हो सकता है

जनजातियाँ जीवन अनेक धार्मिक मान्यताओं और विश्वासों से परिपूर्ण एक समाज है। अपने नित्य जीवन में यह समाज अनेक प्राकृतिक चुनौतियों का सामना करते हैं तथा उनसे अपना सामंजस्य अथवा निपटते हुए अनेक प्रयासों को सम्पन्न करते है। अतः जनजातीय जीवन में 'ओझा' का एक विशिष्ट स्थान होता है जो उनके सामाजिक जीवन में अनेक कार्यों को उनके लिए सम्पन्न कराता है।

ओझा का व्यवसाय मान्यता प्राप्त होता है तथा उसकी प्रेरणाओं और कार्यों को धन अथवा सेवाओं के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। ओझा अपने कार्यो को सम्पन्न करने के लिए जादू–टोना, बलि, तंत्र–मंत्र आदि का सहारा लेता है ।

ओझा इस तरह समाज पर आने वाले संकटों एवं विपत्तियों पूर्व में ही निपटने की क्षमता रखता वही वह संबंधित समाज के कल्याण या उसे निरापद बनाने में सहायता देता है उसकी यही विशेषज्ञता उसे समाज सम्मानीय बनाती है।

विभिन्न बीमारियों का इलाज, वर्शा लाना युद्व में विजय, भूत–प्रेत से छुटकारा, जहरीले के काटने पर उनके जहर से मुक्ति, झाड़–फूँक, ताबीज बनाना आदि ओझा के विशिष्ट कार्य है।

13.3 पुरोहित एवं कार्य

हिन्दू धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था में पुरोहित का स्थान अनेक धार्मिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यों में महत्वपूर्ण रहा है। हिन्दू जीवन शैली में विभिन्न संस्कारों, कर्मकाण्डों, अनुश्ठानों, देवपूजा आदि के लिए किसी पुरोहित का उपस्थित होना अनिवार्यतः माना गया है। अतः किसी हिन्दू व्यक्ति के जीवन में पुरोहित की उपस्थिति समय–समय पर परिलक्षित होती है। प्राचीनकाल में विभिन्न हिन्दू राजाओं ने अपने राजतिलक एवं राज्याभिशेक, अनेक प्रकार के यज्ञ तथा अनेक राजकीय एवं धार्मिक अनुश्ठानों के लिए राजपुरोहितों का एक विशेष पद स्थापित किया था, जो कि राजव्यवस्था में ऐसे समस्त कार्यो को सम्पन्न कराता था। राजपुरोहित को राजा के दरबार में एवं प्रजा के बीच अत्यन्त ही सम्मानजनक स्थान प्राप्त था।

आधुनिक हिन्दू जीवनशैली में पुरोहित जन्म संस्कार, विवाह संस्कार, मृत्यु संस्कार, गृहप्रवेश तथा विभिन्न पूजाओं के लिए आमंत्रित किये जाते हैं। वास्तव में पुरोहित वर्ग इन सभी कार्यों के लिए अपनी विशेषज्ञता एवं दक्षता के लिए जाने जाते हैं तथा इस हेतु वे विशिष्ठ परिधानों एवं एक विशिष्ठ जीवनशैली भी अपनाते हैं। पुरोहित विभिन्न धार्मिक पुस्तकों, वेद, पुराण पर चिंतन–मनन करते हैं साथ ही वे इसके पठन–पाठन में भी सहयोग करते हैं। हिन्दू समाज में पुरोहित ज्योतिष विद्या एवं वास्तुकला के विशेषज्ञ भी माने जाते हैं। विभिन्न मुहुर्तों को निकालने में, वैवाहिक संबंधों को बनाने में पुरोहित की राय या सलाह महत्वपूर्ण होती है। ज्योतिष के माध्यम से पुरोहित कुछ भविश्यवाणियाँ करता है, गृहप्रवेश के समय वास्तु पूजन करता है तथा किसी नवजात शिशु के जन्म पर नामकरण संस्कार के समय उसे एक विशिष्ठ नाम देता है, जिससे समाज में उनकी एक विशिष्ठ जगह बन जाती है। अतः हिन्दू जीवनचक्र में पुरोहित का एक सम्मानजनक एवं अनिवार्य स्थान है।

पुरोहित का अर्थ है धार्मिक अनुष्ठान संपन्न कराने वाला, विशेषकर यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, आदि। पुरोहित का मुख्य कार्य धार्मिक क्रियाओं को शास्त्रानुसार संपन्न करवाना है, जिसमें मंत्रोच्चारण, पूजा सामग्री का उपयोग, और विभिन्न अनुष्ठानों की प्रक्रिया शामिल हैं।

धार्मिक अनुष्ठान : पुरोहित धार्मिक अनुष्ठानों को संपन्न कराते हैं, जैसे विवाह, यज्ञ, श्राद्ध, आदि। वे धार्मिक संस्था के प्रशासनिक कार्यों का संचालन करते हैं और धार्मिक अनुयायियों का मार्गदर्शन करते हैं।

मंत्रोच्चारण और पूजा सामग्री : पुरोहितों को मंत्रों के उच्चारण, पूजा सामग्री और विभिन्न अनुष्ठानों की प्रक्रिया का गहन ज्ञान होता हैं।

यज्ञ और संस्कार : पुरोहित यज्ञ, संस्कार और अन्य धार्मिक अनुष्ठानों को संपन्न कराते हैं। वे यज्ञ का ब्रह्मा भी होते हैं।

धार्मिक मार्गदर्शन : पुरोहित धार्मिक अनुयायियों को धार्मिक मार्गदर्शन देते हैं और उन्हें धर्म के नियमों और सिद्धांतों से अवगत कराते हैं।

पारंपरिक भूमिका : पुरोहित पारंपरिक रूप से एक वंशानुगत पद है, जो अक्सर एक परिवार के भीतर ही चला जाता हैं।

13.4 पैगंबर

इस्लाम के अनुसार ईश्वर ने धरती पर मनुष्य के मार्गदर्शन के लिए समय–समय पर किसी व्यक्ति विशेष को अपना दूत बनाया। यह दूत भी मनुष्य जाति में से ही होते थे और लोगों को ईश्वर की ओर बुलाते थे इन व्यक्ति को इस्लाम में नबी कहते है। जिन नबियों को ईश्वर ने स्वयं शास्त्र या धर्म पुस्तकें प्रदान की उन्हें रसूल कहते है।

इस्लाम का उदय कब हुआ, इन पर अलग–अलग अवधारणाएँ है। कुछ लोग इसे सातवीं सदी में आरम्भ हुआ मानते हैं तो कुछ मानते है कि यह आदि काल से चल रहा है। एक पक्ष मानता है कि इस्लाम का उदय सातवीं सदी में अरब में हुआ। अंतिम नबी मुहम्मद साहब का जन्म 570 इस्वी में मक्का में हुआ। 613 के आसपास उन्होंने लोगों को ज्ञान बाँटना आरम्भ किया तो उनके बहुत से अनुयायी बनते चले गए। इसी को इस्लाम की षुरुआत कहा गया। दूसरे पक्ष के विचारक इसे सही नहीं मानते। वे इस्लाम के मूल ग्रंथ कुरआन के आधार पर इसकी शुरुआत देखते है। इनके अनुसार इस्लाम आदिकाल से अस्तित्व में है। कुरआन में पहले इंसान ''आदम'' का जिक्र हैं। ''मुस्लिम'' षब्द का इस्तेमाल हजरत इब्राहिम ;अलैहिद्ध के लिए किया गया है। जो लगभग 4 हजार साल पहले एक महान पैगम्बर हुए। कहा जाता है कि हजरत आदम, अलैहिद्ध से लेकर हजरत मुहम्मद ''सल्ल'' तक हजारों वर्शों में कई पैगम्बर हुए। इनमें से 26 के नाम कुरआन में है। इनके अनुसार हजरत मुहम्मद ''सल्ल'' इस्लाम के प्रवर्तक नहीं थे। बल्कि ईश्वर का संदेश फैलाने वाले एक पैगम्बर थे। इस्लाम मुताबिक कोई इन्सान तब तक सच्चा मुसलमान नहीं हो सकता जब तक कि वह पाँच कर्मों को पूरा न करे। इन पाँचों में ये शामिल है :–

1. वह इस बात को माने कि अल्लाह के अलावा कोई अन्य पूज्य नहीं है और मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम अल्लाह के संदेश वाहक है
2. नमाज कायम करें
3. अनिवार्य धर्म–दान, जकात दे।
4. रमजान के महीने का रोजा रखे।

5. काबा का हज्ज करे, यदि वह वहाँ तक पहुँचने में समर्थ हो ।

इस्लाम के मुताबिक ये पाँच बातों को मानने वाला ही सच्चा मुसलमान हो सकता है। इन्होंने इस्लाम धर्म का प्रवर्तन किया। ये इस्लाम के सबसे महान नबी और आखिरी संदेशवाहक, अरबी, नबी या रसूल, फारसी, पैगम्बर माने जाते है। जिनको ईश्वर, अल्लाह ने फरिश्ते जिब्राएल द्वारा कुरान का संदेश दिया था मुसलमान इनके लिए परम आदर भाव रखते हैं। ये इस्लाम के प्रथम संदेशवाहक नहीं बल्कि अन्तिम संदेशवाहक थे।

पैगंबर की विशेषताएँ कई हैं। कुछ मुख्य विशेषताओं में शामिल हैंरू दया, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, साहस, न्याय, और सहनशीलता। पैगंबर को ईश्वर का संदेशवाहक माना जाता है जो लोगों को ईश्वर के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं।

दया: पैगंबर हमेशा दूसरों के प्रति दयालु और करुणावान होते हैं। वे सभी को समान रूप से देखते हैं और सभी की भलाई चाहते हैं।

ईमानदारी: पैगंबर हमेशा सत्य बोलते हैं और अपने वादों को पूरा करते हैं। वे कभी भी झूठ नहीं बोलते हैं या धोखा नहीं करते हैं।

सत्यनिष्ठा: पैगंबर हमेशा सत्य पर विश्वास करते हैं और सत्य के मार्ग पर चलते हैं। वे कभी भी झूठे या गलत रास्ते पर नहीं चलते हैं।

साहस: पैगंबर हमेशा कठिन परिस्थितियों में भी साहस और दृढ़ता के साथ खड़े रहते हैं। वे कभी भी हार नहीं मानते हैं और हमेशा आगे बढ़ते रहते हैं।

न्याय : पैगंबर हमेशा न्याय करते हैं और सभी के साथ समान रूप से व्यवहार करते हैं। वे कभी भी किसी को भी अन्याय नहीं करते हैं।

सहनशीलता: पैगंबर हमेशा दूसरों की राय और विश्वासों को सम्मान करते हैं। वे कभी भी दूसरों को नीचा नहीं दिखाते हैं या उनका अपमान नहीं करते हैं।

ईश्वर का डर: पैगंबर ईश्वर से डरते हैं और उसके नियमों का पालन करते हैं। वे कभी भी पाप नहीं करते हैं और हमेशा अच्छा काम करने की कोशिश करते हैं।

ईश्वर पर भरोसा: पैगंबर ईश्वर पर भरोसा करते हैं और उसके मार्गदर्शन का पालन करते हैं। वे कभी भी घबराते नहीं हैं और हमेशा आगे बढ़ते रहते हैं।

विनीत: पैगंबर हमेशा विनम्र होते हैं और कभी भी घमंड नहीं करते हैं। वे हमेशा दूसरों को सम्मान देते हैं और उनसे सीखते हैं।

उदार: पैगंबर हमेशा उदार होते हैं और दूसरों की मदद करते हैं। वे कभी भी स्वार्थी नहीं होते हैं और हमेशा दूसरों की भलाई के बारे में सोचते हैं।

शिष्टाचार: पैगंबर हमेशा शिष्टाचार का पालन करते हैं और दूसरों के साथ सभ्य तरीके से

व्यवहार करते हैं। वे कभी भी बदतमीजी नहीं करते हैं और हमेशा दूसरों का सम्मान करते हैं।

साहसिक: पैगंबर हमेशा साहसिक कार्य करते हैं और कभी भी कठिनाइयों से नहीं डरते। वे हमेशा आगे बढ़ते रहते हैं और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं।

13.5 सारांश

ओझा, पुरोहित एवं पैगम्बर विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं में अपने विशिष्ठ कार्यों के लिए पहचाने गये हैं। जनजातीय समाजों में ओझा का एक विशिष्ठ स्थान है तो हिन्दू धार्मिक व्यवस्थाओं में सामान्य जन से लेकर राज व्यवस्था तक पुरोहित वर्ग अपने विशिष्ठ धार्मिक क्रियाकलापों के लिए पहचाना गया है, जबकि मुस्लिम समाज में पैगम्बर को किसी देव–दूत के समान माना गया है और उन्हें अत्यन्त ही सम्मानजनक स्थान प्राप्त है।

13.6 शब्दावली

जीवनचक्र (Life Cycle) – किसी व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरने की दषाएँ जीवनचक्र कहलाती हैं।

जीवनशैली (Life Style) – जिंदगी जीने का तरीका।

13.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सिंह योगेन्द्र : सोषल चेन्ज

श्रीनिवास एम.एन. : सोषल चेन्ज इन माडर्न इण्डिया, केलिफोनिर्या यूनिवर्सिटी

13.8 बोध प्रश्न

- पुरोहित के कार्यों को 35 षब्दों में समझाइये ?

  ————————————————————————

  ————————————————————————

- पैगम्बर की अवधारणा को लिखिए ?

  ————————————————————————

  ————————————————————————

- पुरोहित का कार्य निम्न में से नहीं है –

  (अ) पूजा–अर्चना (ब) कर्मकाण्ड

  (स) पठन–पाठन (द) प्रबंधकीय कार्य

  उत्तर – (द) प्रबंधकीय कार्य

- ओझा सामान्यतः किन समाजों से संबंधित हैं –

(अ) जनजातीय (ब) अनुसूचित जाति

(स) दलित समाज (द) आधुनिक समाज

उत्तर – (अ) जनजातीय

- ओझा शब्द का उद्‌भव किस भाषा से हुआ है?

(अ) हिन्दी (ब) उर्दू

(स) फारसी (द) संस्कृत

उत्तर – (द) संस्कृत

- इस्लाम धर्म के प्रवर्तक कौन थे –

(अ) मोहम्मद साहब (ब) ईसामसीह

(स) गौतमबुद्ध (द) महावीर

उत्तर – (अ) मोहम्मद साहब

इकाई–14

धर्म : सामाजिक स्थिरता और बदलाव

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 सामाजिक स्थिरता एवं बदलाव

14.3 सामाजिक परिवर्तन, परिभाषा, विशेषताएँ

14.4 सामाजिक परिवर्तन के कारक

14.5 सारांश

14.6 शब्दावली

14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.8 बोध प्रश्न

14.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप जानेगे –

1 सामाजिक स्थिरता एवं बदलाव को आप समझ सकेगे ।

2 सामाजिक परिवर्तन,एवं परिभाषा, को आप समझ सकेगे ।

3 सामाजिक परिवर्तन एवं विशेषताएँ को आप समझ सकेगे ।

4 सामाजिक परिवर्तन के कारक को आप समझ सकेगे ।

समाज सदैव परिवर्तनशील है तथा इस सामाजिक परिवर्तन के अनेक कारक हैं। प्रस्तुत इकाई में सामाजिक स्थिरता एवं परिवर्तन को समझाया गया है।

14.1 प्रस्तावना

सामाजिक परिवर्तन मानव जीवन में निरन्तर रहा है। यह आदिम व्यवस्था से लेकर आज तक दृष्टिगोचर होता है। कुछ समाज स्थिरता या जड़ता का बोध कराते हैं तो कुछ समाज क्रमिक परिवर्तन को दर्शाते हैं। मानव जीवन में दोनों ही स्थितियाँ कम या अधिक मात्रा में सभी जगह दिखाई देती है।

14.2 सामाजिक स्थिरता एवं बदलाव

अगस्त काम्टे ने समाजशास्त्र को सामाजिक गतिकी और सामाजिक स्थितिकी को दो

भागों में स्पष्ट किया है।

सामाजिक स्थितिकी, सामाजिक स्थिरता का अध्ययन करती है तो गतिकी का अध्ययन क्षेत्र सामाजिक परिवर्तन का है। सामाजिक स्थिरता एक ऐसी सामाजिक स्थिति को इंगित करता है जो जड़ता अथवा अन्य षब्दों अपेक्षाकृत कम मात्रा में परिवर्तन को दर्शाता है।

सामाजिक स्थिरता से तात्पर्य है एक समाज में रहने वाले लोगों के बीच समानता, न्याय और उच्च जीवन स्तर को बढ़ावा देने वाले सामाजिक संबंधों की क्षमता में सुधार। सामाजिक बदलाव का अर्थ है समाज के नियमों, मूल्यों और संरचनाओं में होने वाला परिवर्तन।

समानता और न्याय: सामाजिक स्थिरता का अर्थ है कि सभी लोगों को समान अवसर और संसाधनों तक पहुंच प्राप्त हो, चाहे उनकी जाति, धर्म, लिंग या सामाजिक स्थिति कुछ भी हो.

उच्च जीवन स्तर: यह सुनिश्चित करना कि सभी लोगों के पास भोजन, आश्रय, स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा और अन्य आवश्यक आवश्यकताओं तक पहुंच हो.

सामाजिक संबंध: मजबूत सामाजिक संबंध, जैसे कि परिवार, समुदाय और मित्र, लोगों को एक साथ बांधते हैं और एक–दूसरे का समर्थन करते हैं.

सामाजिक बदलाव को समझना:

परिवर्तन का अर्थ: सामाजिक बदलाव समाज के नियमों, मूल्यों, विश्वासों और व्यवहारों में परिवर्तन है। यह परिवर्तन धीमी या अचानक हो सकता है.

कारण: सामाजिक बदलाव कई कारणों से हो सकता है, जैसे कि तकनीकी प्रगति, जनसंख्या में बदलाव, आर्थिक विकास, या सामाजिक आंदोलनों.

उदाहरण.

शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव, महिलाओं के अधिकार, और LGBTQ$ अधिकारों के लिए सामाजिक आंदोलन सामाजिक बदलाव के कुछ उदाहरण हैं.

सामाजिक स्थिरता और बदलाव दो अलग–अलग लेकिन परस्पर संबंधित अवधारणाएं हैं। सामाजिक स्थिरता सामाजिक संबंधों को मजबूत करने और समानता, न्याय और उच्च जीवन स्तर को बढ़ावा देने के बारे में है, जबकि सामाजिक बदलाव समाज के नियमों, मूल्यों और संरचनाओं में परिवर्तन के बारे में है.

उदाहरण.

सामाजिक स्थिरतारू शिक्षा को सभी के लिए सुलभ बनाना और यह सुनिश्चित करना कि सभी को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्राप्त हो।

सामाजिक बदलावरू महिलाओं को शिक्षा और रोजगार में समान अधिकार देना।

सामाजिक स्थिरतारू यह सुनिश्चित करना कि सभी के पास स्वास्थ्य सेवा तक पहुंच हो।

सामाजिक बदलावरू स्वास्थ्य सेवा प्रणाली में सुधार करना ताकि सभी के लिए उचित और प्रभावी स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध हो।

धर्म समाज में स्थिरता और बदलाव दोनों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने, नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देने और सामाजिक परिवर्तन को उत्प्रेरित करने में सहायक हो सकता है। धर्म की यह द्वैतपूर्ण भूमिका समाज में इसका महत्व दर्शाती है।

धर्म और सामाजिक स्थिरता:

सामाजिक नियंत्रण: धर्म सामाजिक नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण साधन है। धार्मिक नियम और नैतिकता व्यक्ति को नियंत्रित करते हैं और सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में मदद करते हैं।

नैतिक मूल्यों का विकास: धर्म लोगों को नैतिक मूल्यों, जैसे कि ईमानदारी, दया और सम्मान सिखाता है, जो समाज में सद्भाव और सहिष्णुता को बढ़ावा देते हैं।

सामुदायिक भावना: धर्म समुदायों को एकजुट करता है और लोगों के बीच एक मजबूत भावना पैदा करता है। यह धार्मिक समारोहों और सामूहिक प्रार्थना के माध्यम से किया जाता है।

सामाजिक संरचना: धर्म सामाजिक संरचना को बनाए रखने में भी भूमिका निभाता है। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार, समाज में विभिन्न स्तर और भूमिकाएं होती हैं, जो सामाजिक स्थिरता में योगदान करती हैं।

धर्म और सामाजिक बदलाव:

सामाजिक परिवर्तन का उत्प्रेरक: धर्म कभी–कभी सामाजिक परिवर्तन को उत्प्रेरित भी करता है। धार्मिक सुधार आंदोलनों और सामाजिक न्याय के लिए धर्म का उपयोग किया गया है।

नकारात्मक प्रभाव: धर्म का उपयोग सामाजिक असमानता और दमन को बनाए रखने के लिए भी किया जा सकता है। धार्मिक रूढ़िवादी विचार सामाजिक परिवर्तन को रोकने में सहायक हो सकते हैं।

धार्मिक मतभेद: धार्मिक मतभेद सामाजिक संघर्ष और हिंसा का कारण बन सकते हैं।

धर्म की सामाजिक स्थिरता और बदलाव में भूमिका द्वैतपूर्ण है। यह समाज में स्थिरता लाने और नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देने में सहायक हो सकता है, लेकिन इसका उपयोग सामाजिक असमानता और दमन को बनाए रखने के लिए भी किया जा सकता है। धर्म की यह द्वैतपूर्ण भूमिका समाज में इसका महत्व दर्शाती है, और यह समझने के लिए महत्वपूर्ण है

कि धर्म कैसे समाज को प्रभावित करता है।

14.3 सामाजिक परिवर्तन, परिभाषा एवं विशेषताएँ

समाज सदैव परिवर्तनशील है, मनुष्य जन्म से मृत्युपर्यंत अपने जीवन में अनेक भूमिकाओं का निर्वाह करता है। एक समय के पश्चात नई पीढ़ी उसका स्थान लेती है, इस तरह नई पीढ़ी की आवश्यकताएँ, मान्यताएँ तथा कार्यप्रणालियाँ परिवर्तित होती रहती है। अन्य कारक भी इस परिवर्तन की गति को दिशा एवं दशा को प्रभावित करते है। इनमें आर्थिक एवं तकनीकी कारक प्रमुख है।

आवश्यकताओं के साथ ही जनसंख्यात्मक स्थितियाँ भी पारिवारिक, सामाजिक संस्थाओं एवं संगठनों में बदलाव लाती है। तब मनुष्य के मनुष्य से संबंध एवं सामाजिक मूल्यों में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है।

1. **फिचरः**— ने 'परिवर्तन' षब्द को समझाते हुए कहा है कि ''परिवर्तन को संक्षिप्त रुप में पहले ही अवस्था या अस्तित्व की विधि में रुपान्तरण को कहते है।''
2. **जैन्सनः**— के मतानुसार ''सामाजिक परिवर्तन को लोगों के कार्य करने तथा विचार करने की पद्धतियों में रुपान्तरण कहकर परिभाषित किया गया है।''
3. **गुडेः**— के अनुसार समाज या समूह के व्यवहार में किसी भी तरह का बदलाव सामाजिक परिवर्तन है। जबकि कुछ समाजशास्त्री के अनुसार सामाजिक परिवर्तन का अर्थ सामाजिक संरचना या सांस्कृतिक विशेषताओं में बदलाव है।

इस तरह सामाजिक परिवर्तन की विषेपताओं को निम्नानुसार समझाया जा सकता है।

सामाजिक परिवर्तन का संबंध किसी व्यक्ति के विशेष समूह, जाति एवं प्रजाति तथा समिति में होने वाले परिवर्तन से नहीं है। इस प्रकार परिवर्तन तो व्यक्तिवादी प्रकृति का होता है, जबकि सामाजिक परिवर्तन का संबंध सम्पूर्ण समुदाय एवं समाज में होने वाले परिवर्तनों से है। सामाजिक परिवर्तन, समाज की संरचना, संस्थाओं और सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन है। यह एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है, जो हर समाज में घटित होती है, और इसके अनेक कारण और विविध स्वरूप होते हैं।

परिवर्तन के मूल्याकंन में समय एक महत्वपूर्ण स्थिति हैं। दो या अधिक स्थितियों का मूल्यांकन समय आधारित होता है। परिवर्तन एक सतत् प्रक्रिया है जिसकी गति तीव्र या मंद हो सकती हैं। यकायक परिवर्तन संभव है। दो परिवर्तनों के बीच की स्थिति संक्रमण काल की होती है।

सामाजिक परिवर्तन की मुख्य विशेषताएँ

1 **सार्वभौमिक :** यह हर समाज में होता है, और कोई भी समाज स्थिर नहीं रहता है।

2 **सामाजिक :** यह किसी विशेष व्यक्ति या समूह के लिए नहीं होता है, बल्कि पूरे समाज

को प्रभावित करता है।

3 **विविध :** यह सहयोग, समायोजन, संघर्ष, प्रतियोगिता आदि के माध्यम से अलग–अलग रूपों में प्रकट होता है।

4 **सापेक्षिक** : यह हर समाज में समान गति से नहीं होता है, और अलग–अलग इकाइयों में अलग–अलग गति हो सकती है।

5 **अनेक कारण** : इसके कई कारण हो सकते हैं, जैसे कि जनसांख्यिकीय, प्रौद्योगिक, सांस्कृतिक, आर्थिक कारक आदि।

6 **अनिर्धारित** : इसकी सटीक भविष्यवाणी करना मुश्किल है, क्योंकि अनेक आकस्मिक कारक भी परिवर्तन सकते हैं।

सामाजिक परिवर्तन के प्रकार:

विकासवादी : यह समाज के विकास के चरणों में परिवर्तन है, जो धीरे–धीरे होता है।

क्रांतिकारी: यह समाज में अचानक और बड़े पैमाने पर परिवर्तन है, जो अक्सर संघर्ष या आंदोलन के माध्यम से होता है।

सुधारवादी: यह समाज में धीरे–धीरे सुधार करने का प्रयास है, जो अक्सर सरकार या संगठन के माध्यम से होता है।

सांस्कृतिक: यह समाज के सांस्कृतिक मूल्यों, विश्वासों और मानदंडों में परिवर्तन है।

आर्थिक: यह समाज के आर्थिक ढांचे, उत्पादन और वितरण में परिवर्तन है।

राजनीतिक: यह समाज के राजनीतिक ढांचे, सरकार और कानून में परिवर्तन है।

14.4 सामाजिक परिवर्तन के कारक

सामाजिक परिवर्तन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है तथा इसके कारकों को समझना एक दिलचस्प विषय है। समाजशास्त्रियों ने सामाजिक शक्तियों के अतिरिक्त इस परिवर्तन के लिए व्यक्तियों की भूमिका को भी महत्वपूर्ण माना है। सामाजिक विचारकों ने इन्हें मुख्यतः निम्नलिखित भागों में बांटा है।

1. परिस्थितिकीय कारक 2. प्राणिशास्त्रीय कारक
3. आर्थिक कारक 4. प्रौद्यौगिकीय कारक
5. सांस्कृतिक कारक

1. **पारिस्थितिकीय कारक**– में भौतिक पर्यावरण तथा भौगोलिक पर्यावरण को सम्मिलित किया गया है। मानवीय व्यवहार पर इसका गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है, सामाजिक व्यवहार, खान–पान, वेशभूशा, वास्तुकला इससे प्रभावित होता है।

2. **प्राणिशास्त्री कारक**– अनेक समाजशास्त्रियों ने प्राणिशास्त्रीय कारक तथा सामाजिक परिवर्तन में घनिश्ठ संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया है और इस बात पर बल दिया है कि हर जीवित प्राणी अपने अस्तित्व के लिए संघर्श करना होता है जिसके फलस्वरुप सामाजिक परिवर्तन घटित होता है। प्राणिशास्त्रीय दृष्टिकोण से प्रत्येक प्राणी प्रत्येक पर्यावरण में जीवित रहने योग्य नहीं होता। ऐसे अयोग्य व्यक्ति को प्रकृति अपने नियम से मार डालने के लिए चुन लेती है। इसको प्राकृतिक प्रवरण कहा जाता है।

3. **आर्थिक कारक**– मानवीय जीवन में आर्थिक कारक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं दिषा प्रदान करने वाले होते हैं। उत्पादन एवं वितरण प्रणालियाँ, राजनीति अभिनीत होती है, जिससे उक्त प्रणालियाँ प्रभावित होती है जिसका सीधा प्रभाव मानव जीवन पर दिखाई देता है।

4. **प्रौद्योगिकीय कारक**– समाज में आर्थिक कारकों के अतिरिक्त प्रौद्योगिकीय कारक भी एक प्रमुख घटक है। यह आर्थिक नीतियों तथा सामाजिक संबंधों को प्रभावित करते हैं।

   आधुनिक तकनीक मानवीय संबंध, समूह के संबंध, अंतःक्रियाएँ, पारिवारिक रिश्तों स्त्री–पुरुष के संबंधों में आमूलचूल परिवर्तन किया है।

   प्रौद्योगिकीय ने आवागमन, संचार, उत्पादन, व्यक्तित्व विकास आदि को प्रभावित करता है।

5. **सांस्कृतिक कारक**– सांस्कृतिक कारकों से अर्थ विभिन्न विचारधाराओं और अन्य संस्कृतियों से प्रभावित होना है अन्य समाजों के श्रेष्ठ एवं अन्य गुणों ने तकनीक एवं सामाजिक मेलजोल अथवा संपर्क से परिवर्तन को महत्वपूर्ण दिशा दी है भाषा, धार्मिक व्यवहार, विश्वास आदि में नूतनता के साथ सांस्कृतिक कारकों को स्पष्टता से समझा जा सकता है।

सामाजिक परिवर्तन का विशय प्रारंभ से ही समाजशास्त्र के अध्ययन का एक केन्द्रीय विशय रहा है। सेन्ट साइमन, ऑगस्त काम्ट ''तीन अवस्थाओं में परिवर्तन का नियम'' दुर्खीम ''यांत्रिक समाज से सावयवी समाज में परिवर्तन'' एफ टॉनीज ''गैमिनषैफ्ट से गैसिलषैफ्ट'' तथा कार्ल मार्क्स ''वर्ग संघर्श द्वारा क्रांतिकारी परिवर्तन'' आदि ने इस विशय की अपने–अपने ढंग से विषद् व्याख्याएँ की है।

सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारक क्या है, इस प्रश्न के उत्तर के बारे में भारी मतभेद है। इस संबंध में कुछ बहु प्रचलित धारणाएँ ये रही है, 1. कि सामाजिक परिवर्तन की मुख्य प्रक्रियाएँ बहिर्जात होने की अपेक्षा अन्तर्जात होती है, 2. कि सामाजिक परिवर्तन के सर्वाधिक निर्णायक कारकों की प्रकृति सांस्कृतिक, राजनीतिक अथवा सैनिक होने की अपेक्षा आर्थिक या भौतिक होती है, 3. कि समाज और राश्ट्र–राज्य में अन्तर नहीं हैं। सामाजिक परिवर्तन संबंधी इन तीनों ही धारणाओं के बारे में प्रश्न उठाए गए हैं। इन तीनों ही धारणाओं को आजकल यथावत स्वीकार नहीं किया जाता है।

14.5 सारांश

सामाजिक परिवर्तन एक जटिल तथ्य है। इसकी व्याख्या किसी एक ही कारक के आधार पर नहीं की जा सकती। अनेक कारकों के योग से ही समाज में परिवर्तन घटित होते है किसी एक समाज में कुछ विशिष्ट कारक परिवर्तन लाते हैं तो दूसरे समाज में परिवर्तन के भिन्न कारण हो सकते है। कभी कोई एक विशेष कारक मुख्य हो सकता है तो अन्य कारक सहायक।

14.6 शब्दावली

- सामाजिक स्थैतिकी (Social statics) – समाज का स्थिर पक्ष अर्थात् संरचना तथा उससे संबंधित पारस्परिक भागों के अध्ययन हेतु उपयोग किया जाता है ।
- सामाजिक गतिकी (Social Dyanamics) – समाज की प्रक्रियाओं तथा समाज के परिवर्तनों के क्रमिक स्तरों के संदर्भ में सामाजिक अध्ययन ।

14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- सिंह योगेन्द्र, मॉडर्नाइजेषन ऑफ इण्डियन ट्रेडिषन
- सिंह योगेन्द्र, सोषल चेन्ज
- श्रीनिवासन, सोषल चेन्ज इन मॉडर्न इण्डिया

14.8 बोध प्रश्न

- सामाजिक परिवर्तन की तीन प्रमुख विशेषताओं को लिखिए ?

  ———————————————————————————————————

  ———————————————————————————————————

- सामाजिक परिवर्तन के कौन–कौन से प्रमुख कारक हैं ? नाम लिखिए ।

  ———————————————————————————————————

  ———————————————————————————————————

- सामाजिक परिवर्तन के अर्थ को स्पष्ट कीजिए?

  ———————————————————————————————————

  ———————————————————————————————————

- वह अर्थव्यवस्था जिसमें उत्पादन के साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है, क्या कहलाती है?

  (अ) पूँजीवादी

(ब) मिश्रित

(स) समाजवादी

(द) उदारवादी

उत्तर – (स) समाजवादी

➢ सामाजिक परिवर्तन निम्न में से कौन से समाज की विशेषता है?

(अ) प्रागैतिहासिक

(ब) ऐतिहासिक

(स) आधुनिक

(द) उपरोक्त सभी

उत्तर – (द) उपरोक्त सभी

इकाई 15

कट्टरपंथ : कुछ विशेष अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 कट्टरपंथ क्या है

15.2 कट्टरपंथ का अर्थ

15.3 कुछ उदाहरण

15.4 सारांश

15.5 शब्दावली

15.6 बोध प्रश्न

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप जान सकेंगे–

1. इस इकाई में धर्म के अतिवादी व्यवहार को समझाया गया है।
2. कट्टरवाद को आप समझ सकेंगे।
3. कट्टरवाद का अर्थ एवं उदाहरण को आप समझ सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

कट्टरपंथ को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसमें व्यक्ति किसी विशिष्ट विचारधारा या सामाजिक परिवर्तन के उद्देश्य को बढ़ावा देने के लिए हिंसा का प्रयोग करने की इच्छा सहित चरमपंथी विश्वासों को अपना लेते हैं।

विश्व के लगभग सभी धर्मों में अतिवादी सोच अनेक स्तरों एवं आयामों में दिखाई देती है । सामान्यतः कट्टरता से तात्पर्य उसके हिंसात्मक रूप से लिया जाता है, लेकिन वास्तव में कट्टरता किसी भी धर्म या उसके विश्वास की एक अतिवादी सोच या व्यवहार है। कट्टरपंथ एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कोई व्यक्ति या समूह किसी चरम विचारधारा या विश्वास को अपनाता है, जो हिंसा को स्वीकार करता है या उसका उपयोग करता है। यह कई कारकों से प्रेरित हो सकता है, जैसे कि विचारधारा, धार्मिक विश्वास, राजनीतिक विश्वास, या सामाजिक पूर्वाग्रह है।

कट्टरपंथी विचारधारा वह है जो किसी विशेष विचार, धर्म, या सामाजिक समूह के प्रति

अंधाधुंध निष्ठा और अति उत्साह को दर्शाता है। यह विचारधारा आमतौर पर दूसरों के विचारों या विश्वासों को सहन नहीं करती है और अपनी विचारधारा को स्थापित करने के लिए हिंसा या चरम तरीकों का उपयोग करने के लिए तैयार रहती है।

किसी सम्प्रदाय या विचार को आंख मूंदकर मानना और उसके लिए अति उत्साह से काम करना कट्टरता (fanaticism) कहलाता है। जॉर्ज सन्तायन के अनुसार, ष जब लक्ष्य ही भूल गया हो तब अपने प्रयास को दोगुना बढ़ा देनाष कट्टरपन है। कट्टर व्यक्ति बहुत कड़ाई से किसी विचार का पालन करता है तथा उससे भिन्न या विपरीत विचारों को सह नहीं सकता।

धर्म के बारे में बात करने के लिए कट्टरपंथी शब्द का सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाता है। एक विशेषण के रूप में, यह एक धार्मिक पाठ या विश्वासों के समूह की एक बहुत ही सख्त, शाब्दिक व्याख्या का वर्णन करता है, और संज्ञा का अर्थ है एक व्यक्ति जो उन दृढ़, अक्सर चरम, विश्वासों को रखता है ।

कट्टरवाद क्या है

हम सभी इस प्रकार के लोगों को जानते हैं। उनकी मान्यताएँ सही हैं, और जो कोई भी उनकी तरह विश्वास नहीं करता वह मूर्ख, पागल, दुष्ट या तीनों है। कट्टरपंथी सही है, आप गलत हैं, और सही होना ही एकमात्र ऐसी चीज़ है जो मायने रखती है।

कट्टरपंथी लोगों का एक सामान्य व्यवहार उन लोगों को अमानवीय या शैतानी रूप में चित्रित करने की प्रवृत्ति है जो उनके विश्वास के अनुरूप नहीं होते हैं, जो उन्हें अपने विश्वासों का विरोध करने वालों से झूठ बोलने, दुर्व्यवहार करने और अन्यथा दुर्व्यवहार करने की अनुमति देता है, जो अक्सर उनके स्वयं के घोषित विश्वासों के विपरीत होता है।

पश्चिम में आपको मिलने वाले सबसे आम कट्टरपंथी ईसाई हैं, लेकिन यहूदी, मुस्लिम, शिंटो और हिंदू कट्टरपंथियों की नस्लें भी हैं। यहां तक कि बौद्ध धर्म ने भी प्राचीन चीन में ताओवादियों के साथ राजनीतिक दमन, धर्मग्रंथों को जलाने और सीधे हत्या के अभियानों का आदान–प्रदान करते हुए अपने पवित्र युद्ध किए हैं ।

कट्टरवाद भी धार्मिक घटना से इतर कुछ है। साम्यवाद, पूंजीवाद, समाजवाद, नस्लवाद, पर्यावरणवाद, फासीवाद, लोकतंत्र, अराजकतावाद और हां, यहां तक कि नास्तिकता जैसी गैर–धार्मिक विचारधाराएं भी अपने–अपने ब्रांड के 'कट्टरपंथी' लोगों को आकर्षित कर सकती हैं।

कट्टरपंथ क्या है

कट्टरपंथ शब्द का प्रयोग आमतौर पर उस मानसिक प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए किया जाता है, जिससे कोई व्यक्ति गुजरता है और खतरनाक रास्ते पर चला जाता है।

यदि कोई व्यक्ति कट्टरपंथी बन रहा है तो इसका अर्थ है कि वह चरम विचारधाराओं या विश्वासों, आतंकवादी समूहों और गतिविधियों के समर्थन में चरम विचार प्रदर्शित कर रहा है।

यह पता लगाना कठिन हो सकता है कि कोई व्यक्ति कट्टरपंथी बन रहा है, क्योंकि कुछ संकेत अन्य अंतर्निहित मुद्दों या चुनौतियों के सूचक होते हैं, जिनका कट्टरपंथीकरण से कोई संबंध नहीं होता।

लेकिन हम जानते हैं कि व्यवहार में किसी भी बदलाव को पहचानने में दोस्त और परिवार सबसे बेहतर होते हैं। अगर आपको लगता है कि वे कमज़ोर हैं, तो किसी से संपर्क करें और बात करें। अगर आप सीधे हमसे बात नहीं करना चाहते हैं, तो ऐसे दूसरे लोग भी हैं जो आपकी बात सुन सकते हैं और मदद कर सकते हैं। यह आपका, कोई धार्मिक या सामुदायिक नेता, आपका स्थानीय अधिकारी या कोई शिक्षक हो सकता है।

कट्टरपंथ या नवजागरणवाद धार्मिक विवेचकों का उनकी दृष्टि में शुद्ध एवं मौलिक मूल्यों और व्यवहारों की ओर लौटने का प्रयास है।

सामाजिक बदलाव की शक्तियाँ कट्टरपंथ के उदय के लिए महत्वपूर्ण हैं। जब कभी समाज में भारी बदलाव आते हैं और बदलाव के कारण समुदाय में उथल–पुथल होती है तो, बहुधा लोगों में अस्मिता का ह्रास होता है और जड़विहीनता की स्थिति बनती है। इस प्रकार की स्थितियों में लोगों को सांत्वना के लिए जो भी सहारा मिलता है ये उसे पकड़ लेते हैं। कट्टरपंथ किसी अधिक अच्छे पूर्ववर्ती युग की वापसी का वादा करता है। इसके मनोवैज्ञानिक आकर्षण से बचना लोगों के लिए कठिन होता है।

हिंसक उग्रवाद तब होता है जब लोग अपने स्वयं के एजेंडे के समर्थन में या अपने स्वयं के विश्वासों को आगे बढ़ाने के लिए हिंसा की धमकी देते हैं या उसका उपयोग करते हैं। अन्य संगठनों के साथ मिलकर काम करते हुए, पुलिस गृह कार्यालय के एक कार्यक्रम प्रिवेंट के माध्यम से कमजोर लोगों को चरमपंथियों द्वारा शोषण किए जाने से बचाती है। लेकिन हम तभी चीजों को बदलने में मदद कर सकते हैं जब व्यक्ति ने कोई आपराधिक कृत्य नहीं किया हो।

इसलिए अपनी चिंताओं को समय रहते साझा करना बहुत ज़रूरी है। अगर आपने उस व्यक्ति से बात करने की कोशिश की है जिसके बारे में आप चिंतित हैं और फिर भी चिंतित महसूस कर रहे हैं, तो हम आपको सलाह और सहायता के लिए उससे संपर्क करने के लिए प्रोत्साहित करेंगे। समय रहते कार्रवाई करके आप उस व्यक्ति की रक्षा करने में मदद कर सकते हैं जिसकी आप परवाह करते हैं और उसे चरमपंथ से दूर रहने के लिए ज़रूरी मदद दिला सकते हैं।

15.2 कट्टरपंथ का अर्थ

विभिन्न धर्मों की चरमपंथी मानसिकता उसके अनुयायियों को उसके पालन, व्यवहार एवं सोच में उसे अतिवादी सोच की तरफ ले जाती है । इस स्थिति में वह धर्म के पालन एवं व्यवहार में एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाता है कि वह अन्य किसी विचार के प्रति सहिश्णु नहीं होता तथा अपने ही विचारों को सर्वोत्कृश्ट मानते हुए अन्य विचारधाराओं को हानि पहुँचाने के

लिए भी तत्पर होता है तथा धर्म के उस मौलिक स्वरूप की ओर लौटने का आग्रह करता है जो कि व्यवहारिक दृष्टि से संभव नहीं होता है । अन्य षब्दों में इसे धार्मिक संकीर्णतावाद कहा जाता है ।

भारतीय समाज के विभिन्न धर्म जैसे हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई एवं सिक्ख भी इस उपरोक्त अवधारणा से समय–समय पर प्रभावित हुए हैं तथा इसके अनेक राश्ट्रीय, सामाजिक दुश्परिणाम झेलने पड़े हैं । कट्टरपंथ के अन्तर्गत विचारधाराएँ इतनी उन्मुक्त एवं उद्दण्ड हो जाती हैं कि अन्य किसी विचार को स्थान नहीं देते हुए दूसरे समूहों को हानि पहुँचाने लगती है और यह एक सामूहिक व्यवहार बनने लगता है। ऐसी सामाजिक मनोदषाओं को समाज के कुछ व्यक्ति आर्थिक, मानसिक तथा समाजगत व्यवहार के द्वारा बढ़ावा देते हैं और उनसे अपने हितों की रक्षा करते हैं। कट्टरपंथ समाज को कई दृष्टि से हानि पहुँचाता है। वह समाज का पृथ्थकरण करता है, समाज के विकास की दिषा को अवरूद्ध करता है। नवीन विचारों के आवागमन के मार्ग को अवरूद्ध करता है तथा समाज को संकीर्णता की तरफ ले जाता है। हर बार यह जरूरी नहीं है कि कट्टरता हिंसात्मक ही होती है। जब विश्वासों में संकीर्णता आती है तो वह समाज के षैक्षिक प्रभावों को कुंठित कर देती है। इससे उसी समाज के कई लोग प्रभावित हो जाते हैं, खासतौर से समाज का गरीबवर्ग, स्त्रियाँ, बच्चे आदि।

एक आंदोलन के रूप में कट्टरवाद संयुक्त राज्य अमेरिका में पैदा हुआ, जो 19वीं सदी के अंत में प्रिंसटन थियोलॉजिकल सेमिनरी में रूढ़िवादी प्रेस्बिटेरियन धर्मशास्त्रियों के बीच शुरू हुआ। यह जल्द ही 1910 से 1920 के आसपास बैपटिस्ट और अन्य संप्रदायों के रूढ़िवादियों में फैल गया ।

कट्टरपंथी राजनीति समाज या राजनीतिक व्यवस्था के मूल सिद्धांतों को बदलने या बदलने के इरादे को दर्शाती है, अक्सर सामाजिक परिवर्तन, संरचनात्मक परिवर्तन, क्रांति या कट्टरपंथी सुधार के माध्यम से। कट्टरपंथी विचारों को अपनाने की प्रक्रिया को कट्टरता कहा जाता है।

कट्टरवाद की विशेषताएं एक ऐसी धार्मिक धारणा है जो किसी धर्म के मूल सिद्धांतों और धार्मिक ग्रंथों की शाब्दिक व्याख्या पर जोर देती है। यह अक्सर दूसरों के विचारों को खारिज करने और अपने ही विचारों को दूसरों पर थोपने की प्रवृत्ति से जुड़ी होती है।

कट्टरपंथी अपराधशास्त्र कहता है कि समाज के समग्र हितों के बजाय शासक वर्ग के सामान्य हितों के संदर्भ में कार्य करता है और जबकि संघर्ष की संभावना हमेशा मौजूद रहती है, इसे शासक वर्ग की शक्ति द्वारा लगातार बेअसर किया जाता है।

कट्टरपंथी लोकतंत्र एक प्रकार का लोकतंत्र है जो समानता और स्वतंत्रता के कट्टरपंथी विस्तार की वकालत करता है। कट्टरपंथी लोकतंत्र समानता और स्वतंत्रता के कट्टरपंथी विस्तार से संबंधित है, इस विचार का पालन करते हुए कि लोकतंत्र एक अपूर्ण, समावेशी, निरंतर और प्रतिवर्ती प्रक्रिया है।

कट्टरपंथी व्यवहारवाद शब्द का तात्पर्य बस यही हैरू कि जीव द्वारा किया जाने वाला हर काम एक व्यवहार है। हालाँकि, स्किनर ने व्यवहार के वैध स्पष्टीकरण के रूप में सोच और भावना को खारिज कर दिया। उनके अनुसार, सोच और भावना कोई उप–घटना नहीं हैं और न ही उनका कोई अन्य विशेष दर्जा है; वे केवल समझाने के लिए अधिक व्यवहार हैं।

इस्लामी कट्टरवाद को मुसलमानों के पुनरुत्थानवादी और सुधार आंदोलन के रूप में परिभाषित किया गया है जिसका उद्देश्य इस्लाम के संस्थापक ग्रंथों की ओर लौटना है। इस शब्द का इस्तेमाल इस्लामवाद , इस्लामी पुनरुत्थानवाद, , इस्लामी सक्रियता जैसे समान शब्दों के साथ किया गया है और इसकी आलोचना की गई है।

कट्टरपंथी नारीवाद (Radical Feminism) एक नारीवादी दृष्टिकोण है जो पुरुष वर्चस्व और लैंगिक असमानता को समाज के मूल में मानता है और इसे बदलने के लिए आमूल–चूल परिवर्तन की आवश्यकता मानता है. यह लैंगिक असमानता को खत्म करने के लिए सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संरचनाओं को बदलने की बात करता है ।

कट्टरपंथी मानवतावाद एक ऐसा दर्शन है जो अमूर्त चिंतन से लेकर सामाजिक और राजनीतिक पुनर्निर्माण तक मनुष्य की गतिविधि और अस्तित्व के सभी पहलुओं को समाहित करता है। इस दर्शन के अनुसार, ब्रह्मांड एक कानून–संचालित प्रणाली है, और मनुष्य भौतिक ब्रह्मांड का एक अंतर्निहित हिस्सा है। नतीजतन, मनुष्य मूल रूप से तर्कसंगत है।

कट्टरपंथ की विशेषताएं

कट्टरपंथ (Fanaticism) एक व्यक्ति या समूह द्वारा किसी विचार, धर्म, या विचारधारा को आँख मूंदकर और दृढ़ता से मानने और उसके लिए अत्यधिक उत्साह दिखाने की स्थिति है। यह उन लोगों के लिए भी है जो किसी भी भिन्न या विपरीत विचारों को सहन नहीं कर पाते हैं।

दृढ़ता : कट्टरपंथी अपने विचारों पर दृढ़ता से विश्वास करते हैं और उन्हें कभी भी बदलने से इंकार करते हैं।

अति उत्साह : वे अपने विचारों के प्रति अति उत्साह से काम करते हैं और उन्हें दूसरों पर थोपते हैं। असहनीयता वे किसी भी भिन्न या विपरीत विचारों को सहन नहीं कर पाते हैं और उन्हें खारिज कर देते हैं।

आँख मूंदकर मानना : कट्टरपंथी किसी विचार, धर्म, या विचारधारा को आँख मूंदकर मानते हैं और तर्क या प्रमाण के लिए खुले नहीं होते हैं।

हिंसा : कट्टरपंथी कुछ मामलों में हिंसा का भी उपयोग कर सकते हैं, खासकर जब वे अपने विचारों को लागू करने के लिए अपनी विचारधारा के विरोधियों का सामना करते हैं।

अलगाव : कट्टरपंथी अक्सर अपने विचारों को मानने वाले लोगों से सामाजिक रूप से अलगाव करते हैं और अन्य लोगों से अलग हो जाते हैं।

उत्प्रेषण : वे अक्सर दूसरे लोगों को अपने विचारों को मानने के लिए प्रेरित करते हैं और उन्हें अपने विचारों के प्रति कट्टरपंथी बनाने का प्रयास करते हैं।

शंका : कट्टरपंथी अक्सर दूसरे लोगों पर संदेह करते हैं और उन्हें अपने विचारों से अलग मानते हैं।

कट्टरपंथ के कारण : सामाजिक या राजनीतिक असंतोषरू कुछ लोग अपने समाज या राजनीति से असंतुष्ट होते हैं और कट्टरपंथी विचारों में रुचि रखते हैं क्योंकि वे उन्हें बेहतर और अधिक न्यायसंगत दुनिया का वादा करते हैं।

शिक्षा या अनुभव की कमी कुछ लोग शिक्षा या अनुभव की कमी के कारण कट्टरपंथी विचारों में रुचि रखते हैं, क्योंकि वे अपने जीवन में बेहतर जीवन या बेहतर स्थिति के लिए कट्टरपंथी विचारों पर भरोसा करते हैं।

आर्थिक स्थिति : कुछ लोगों को आर्थिक स्थिति के कारण कट्टरपंथी विचारों में रुचि होती है क्योंकि वे उन्हें अपने जीवन में बेहतर स्थिति के लिए एक रास्ता प्रदान करते हैं।

धार्मिक या सामाजिक दबाव : कुछ लोगों को धार्मिक या सामाजिक दबाव के कारण कट्टरपंथी विचारों में रुचि होती है क्योंकि वे अपने जीवन में बेहतर स्थिति के लिए कट्टरपंथी विचारों पर भरोसा करते हैं।

सामाजिक अलगाव : कुछ लोग सामाजिक अलगाव के कारण कट्टरपंथी विचारों में रुचि रखते हैं, क्योंकि वे उन्हें एक समुदाय का हिस्सा महसूस कराते हैं।

15.3 कुछ उदाहरण

भारतीय संदर्भ में कट्टरपंथ विभिन्न धर्मों में दिखलाई देता है। हिन्दुओं में यह कुछ राजनीतिक दलों द्वारा किन्हीं विशिष्ठ समुदायों के तुश्टिकरण के प्रतिफल के रूप में जड़े जमाता दिखलाई पड़ता है। यह एक सामान्य प्रक्रिया है कि जब कुछ वर्ग विशेष अपने हितों के लिए राजनीतिक दलों द्वारा प्रलोभन पाते हैं तथा बहुसंख्यक वर्ग उनसे अछूता रहता है तब यह एक सामान्य प्रक्रिया के रूप में समाज में अतिवादी विचारों को प्रसारित एवं प्रचारित करने में मददगार होता है। हिन्दू कट्टरवाद इसी विचारधारा का एक परिणाम है।

भारतीय समाज में अन्य अल्पसंख्यक समुदाय अपने ऊपर आती आपदाओं से निपटने के लिए कई बार कई अतिवादी विचारों को संरक्षण देते हैं। राजनीतिक एवं धार्मिक नेता ऐसी स्थितियों को प्रश्रय देते हैं और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा एवं कल्याण हेतु विशिष्ठ कानूनों एवं सुविधाओं की मांग करते हैं। कई बार ऐसा न हो पाने पर या दबावस्वरूप अतिवादी विचारधारा अतिवादी व्यवहार के रूप में परिलक्षित होती है।

यूँ तो भारतीय समाज में ईसाई समाज अपनी षिक्षा एवं सेवा के लिये जाना जाता है, लेकिन अपने अतिवादी धार्मिक विचारों के लिए हमेषा विवादों के घेरे में रहा है। जैसा कि यह स्पष्ट ही है कि कट्टरपंथ हमेषा हिंसात्मक नहीं होता सोच के आधार पर अपनी धार्मिकता के

प्रचार–प्रसार हेतु भी उपयोग में लाया जाता है। भारतीय ईसाई समाज के बारे में ऐसी अनेक धारणाएँ प्रचलन में हैं।

15.4 सारांश

विश्व में सभी समाजों में अपने अस्तित्व रक्षा अथवा प्रचार–प्रसार हेतु अतिवादी मानसिकता को संरक्षण दिया जाता है। प्रायः यह सभी धर्मों में विचारधाराओं में दिखाई देता है । भारतीय समाज के विभिन्न घटक भी इससे अछूते नहीं है।

इसलिए, कट्टरपंथ केवल तर्क फिल्टर के बिना कट्टरवाद है। अगर कोई व्यक्ति समाज, अपने माता–पिता से असंतुष्ट है, मानसिक या शारीरिक रूप से प्रताड़ित है, उसकी खुद की अवधारणा खराब है, पीड़ित मानसिकता है, उसे अपनी आर्थिक या राजनीतिक व्यवस्था की खराब समझ है, वह अभाव, अयोग्यता, परित्याग में विश्वास करता है, या उसे बताया गया है कि केवल एक प्रणाली के तहत ही उसे दूसरों पर समानता या श्रेष्ठता मिलेगी, मानसिक या शारीरिक विकलांगता के कारण उसके पास सीमित विकल्प हैं, या उसके प्रियजनों के लिए संवेदनशीलता बढ़ गई है, जो उत्पीड़ित थे, तो वह व्यक्ति एक धर्मांतरित व्यक्ति है जो चरमपंथी को खोजने का इंतजार कर रहा है।

15.5 शब्दावली

धार्मिक संकीर्णतावाद (Religious Fundamentalism)– एक आंदोलन या आस्था जो पौराणिक धर्म ग्रंथों या प्रकट धर्म के मौलिक तत्वों की ओर लौटने का आग्रह करता है, धार्मिक संकीर्णतावाद कहलाता है।

15.6 बोध प्रश्न

- कट्टरवाद को संक्षेप में समझाइये ?

  _____

  _____

- कट्टरवाद के किन्हीं दो दुश्परिणामों को लिखिए ?

  _____

  _____

इकाई–16
धर्म निरपेक्षता तथा धर्म निरपेक्षीकरण

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 सेकुलर शब्द

16.3 धर्मनिरपेक्षता क्या है?

16.4 धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया

16.5 धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया की विशेषता

16.6 धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया तथा आधुनिक समाज

16.7 धर्म निरपेक्षता की समझ

16.8 सारांश

16.9 शब्दावली

16.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.11 **सन्दर्भ सूची**

16.0 उद्देश्य

इस इकाई मे आप अध्ययन करेगे –

1 सेकुलर अथवा धर्मनिरपेक्षता का अध्ययन करेगे ।

2 धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को आप समझ सकेगे ।

3 धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया को आप समझ सकेगे ।

4 धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया और विशेषताएँ को आप जानेगे ।

16.1 प्रस्तावना

धर्मनिरपेक्षता, पंथनिरपेक्षता अथवा लौकिकवाद आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण माने जाते हैं। यह ऐसी स्थिति है जिसमें राज्य सभी धर्मों, पंथों एवं विचारधाराओं के प्रति तटस्थ होता है तथा उन्हें उनके पालन करने हेतु पूरी आजादी देता है। सामाजिक स्तर पर भी यह अपेक्षा की जाती है कि समाज के सदस्य अन्य समुदायों के प्रति सहिश्णुता का

व्यवहार प्रदर्षित करें।

16.2 सेकुलर शब्द

"सेकुलर" शब्द का अर्थ "धर्मनिरपेक्ष" होता है। इसका मतलब है कि किसी भी धर्म के प्रति तटस्थ रहना या किसी भी धर्म को विशेष समर्थन न देना। यह शब्द लैटिन भाषा के "saeculum" से लिया गया है, जिसका अर्थ है एक युग या सदी।

धर्मनिरपेक्ष या पंथनिरपेक्ष शब्दों के लिए अंग्रेजी का शब्द ''सेकुलर'' सामान्यतः प्रयोग में लाया जाता है । कई बार सेकुलर शब्द से तात्पर्य नास्तिकता से लगाया जाता है, जो बिल्कुल गलत है । धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है कि राज्य का किसी भी धर्म से कोई विशेष संबंध नहीं होता है और सभी धर्मों को समान रूप से मान्यता प्राप्त होती है।

तटस्थता: धर्मनिरपेक्षता का मतलब है कि राज्य किसी भी धर्म का समर्थन या विरोध नहीं करता है।

समानता: धर्मनिरपेक्षता के तहत सभी धर्मों को समान अधिकार और सम्मान प्राप्त होते हैं।

16.3 धर्मनिरपेक्षता क्या है?

भारतीय संदर्भों में धर्मनिरपेक्षता से मतलब सभी धर्मों को उनके विकास तथा रीति रिवाजों के पालन के लिए समान स्तर प्रदान करना है। राज्य सभी धर्मों के प्रति समानता का भाव एवं दूरी को प्रदर्शित करता है तथा व्यवहार के निर्धारण एवं मापदंड में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करते हुए सामाजिक कल्याण की भावना पर बल देता है।

राजनीतिक एवं व्यक्तिगत स्तर पर भी इसी भावना को बल प्रदान करने वाले ''सेकुलर'' कहलाते हैं तथा इस विचारधारा पर काम करने वाले राज्य ''सेकुलर राज्य'' कहलाते हैं ।

लौकिकवाद अथवा धर्मनिरपेक्षता एक ऐसे सिद्धांत पर आधारित सामाजिक–नैतिकता की एक व्यवस्था है, जिसमें धर्म के नैतिकता के मापदंड तथा व्यवहार के निर्धारण के लिए बिना हस्तक्षेप के वर्तमान जीवन तथा सामाजिक कल्याण की भावना पर बल दिया जाता है। यह विचारधारा घटनाओं के निर्णय करने में धर्म परम्परा अथवा प्रथाओं को महत्व नहीं देती। इसके विपरित घटनाओं अथवा समस्याओं का निर्धारण, इस व्यवस्था के अनुसार, बुद्धिसंगतता के आधार पर किया जाता है।

लौकिकीकरण की विचारणा यह मानती है कि लौकिकीकरण, औद्योगिक समाज और संस्कृति के आधुनिकीकरण की एक अपरिहार्य विशेषता है। इस विचारणा के पक्ष में यह कहा जाता है कि आधुनिक विज्ञान ने पारंपरिक विश्वासों की महत्ता को घटना दिया है। जीवन–जगतों के बहुवादीकरण में धार्मिक प्रतिकों के एकाधिकार पर आघात किया है। नगरीकरण की प्रवृत्ति में व्यक्तिवादी और मानकशून्यतावादी जगत को जन्म दिया है।

पारिवारिक जीवन के विच्छेदन ने धार्मिक संस्थाओं को कम सार्थक बनाया है। प्रौद्योगिकी ने परिवेश पर नियंत्रण कर ईश्वर की सर्वव्यापकता के विचार को कमजोर कर दिया है। इस अर्थ में जैसा कि मैक्सवेबर ने कहा है कि लौकिकीकरण को समाज के विवेकीकरण के एक माप के रूप में प्रयोग किया जा रहा है।

अतः आधुनिक समय में धर्म को अब एक सामाजिक जड़ता के रूप में देखना सही नहीं रहा है । बल्कि उसे विकास के संदर्भ में धर्म की कल्याणकारी भूमिका एवं धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों की व्यवहारिक खोज से देखा जाना जरूरी है ।

16.4 धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया

किसी समाज के सदस्यों के विचार धार्मिक मान्यताओं के विपरीत अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण या तार्किकता के आधार पर महत्व देने लगते हैं तो इस प्रक्रिया को धर्मनिरपेक्षीकरण कहते हैं।

धर्मनिरपेक्षता, पंथनिरपेक्षता या सेक्युलरवाद एक ऐसी प्रक्रिया है जो धर्म और राज्य के बीच के संबंध को परिभाषित करती है, यह सुनिश्चित करती है कि राज्य किसी भी धर्म का समर्थन नहीं करता है और सभी धर्मों को समान रूप से देखता है –

भारत में धर्मनिरपेक्षता संविधान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और इसे भारत के संविधान के भाग 3 में धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार के रूप में परिभाषित किया गया है. भारतीय संविधान सभी धर्मों को समान रूप से देखता है और किसी भी धर्म को वरीयता नहीं देता है.

धर्मनिरपेक्षता के लाभ: धर्मनिरपेक्षता कई लाभ प्रदान करती है, जिनमें शामिल हैं-

धर्मों के बीच शांति: धर्मनिरपेक्षता विभिन्न धर्मों के बीच शांति और सहिष्णुता को बढ़ावा देती है

धार्मिक स्वतंत्रता: धर्मनिरपेक्षता सभी नागरिकों को अपनी धार्मिक मान्यताओं को मानने, पालन करने या न मानने की स्वतंत्रता प्रदान करती है.

सामाजिक एकता: धर्मनिरपेक्षता सभी नागरिकों को एक साथ लाने और सामाजिक एकता को बढ़ावा देने में मदद करती है.

लोकतांत्रिक मूल्य : धर्मनिरपेक्षता लोकतांत्रिक मूल्यों जैसे समानता, स्वतंत्रता और न्याय को बढ़ावा देती है.

धर्मनिरपेक्षता की चुनौतियाँ : धर्मनिरपेक्षता की कुछ चुनौतियाँ भी हैं, जिनमें शामिल हैंरू

धार्मिक कट्टरवाद: धार्मिक कट्टरवाद धर्मनिरपेक्षता के लिए एक बड़ी चुनौती है, क्योंकि यह धार्मिक सहिष्णुता और शांति को बाधित करता है.

धार्मिक भेदभाव: धार्मिक भेदभाव धर्मनिरपेक्षता के लिए एक और चुनौती है, क्योंकि यह कुछ धर्मों के सदस्यों को अन्य धर्मों के सदस्यों की तुलना में कम अधिकार देता है.

धार्मिक राजनीति: धार्मिक राजनीति धर्मनिरपेक्षता के लिए एक और चुनौती है, क्योंकि यह धर्म

को राजनीतिक उद्देश्यों के लिए उपयोग करती है, जो धार्मिक सहिष्णुता और शांति को बाधित करता है.

धर्मनिरपेक्षता एक जटिल अवधारणा है जो समाज में धीरे–धीरे लागू होती है। यह धर्म और राज्य के बीच के संबंध को परिभाषित करती है और यह सुनिश्चित करती है कि राज्य किसी भी धर्म का समर्थन नहीं करता है और सभी धर्मों को समान रूप से देखता है. धर्मनिरपेक्षता कई लाभ प्रदान करती है, जैसे कि धर्मों के बीच शांति, धार्मिक स्वतंत्रता, सामाजिक एकता और लोकतांत्रिक मूल्य। हालांकि, धर्मनिरपेक्षता की कुछ चुनौतियाँ भी हैं, जैसे कि धार्मिक कट्टरवाद, धार्मिक भेदभाव और धार्मिक राजनीति

16.5 धर्मनिरपेक्षीकरण की विशेषताएँ

मूर के अनुसार इसकी 3 विशेषताएँ हैं –

1. दैनिक जीवन में धार्मिक नियंत्रण शिथिल होना ।
2. तर्कशक्ति के आधार पर धार्मिक सिद्धांतों के मानसिकता में बदलाव ।
3. सांस्कृतिक व्यवहारों में भी तार्किक आधार पर बदलाव ।

इस तरह किसी समाज में धार्मिक सम्प्रदायवाद के बजाय निरपेक्ष आधार पर की जा रही पुनर्रचना की प्रक्रिया धर्मनिरपेक्षीकरण कहलाती है ।

16.6 धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया तथा आधुनिक समाज

धर्मनिरपेक्षता, जिसे पंथनिरपेक्षता या सेक्युलरवाद भी कहा जाता है, एक ऐसा सिद्धांत है जो राज्य को धार्मिक संस्थानों और धार्मिक नेताओं से अलग करने की वकालत करता है. आधुनिक समाज में धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया, विशेष रूप से एक बहु–धार्मिक समाज में, लोकतांत्रिक सिद्धांतों को बढ़ावा देने, एकता को बढ़ावा देने और राष्ट्र के विविध सांस्कृतिक ताने–बाने को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है ।

औद्योगिक एवं आधुनिक समाजों में दुनिया को ज्यादा अधिक तरह से समझने के लिए धर्म की अपेक्षा वैज्ञानिक तथ्यों एवं व्यवहार को ज्यादा स्थान दिया जाता है तथा धर्म एक सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में कमजोर हुआ है। इसके स्थान पर राज्य की संस्थाएँ तथा वैधानिक कानून आधुनिक जीवनशैली में अधिक कारगर एवं प्रासंगिक लगते हैं। परिणामस्वरूप मानवीय जीवन में एक लक्ष्य के रूप में अब आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकता का स्थान प्रमुख एवं लोकप्रिय है। विश्व एवं अधिकांश भारतीय समाज में यह एक विशिष्ट लक्षण एवं प्रक्रिया के रूप में परिलक्षित हो रहा है ।

16.7 धर्मनिरपेक्षता की समझ

कल्पना कीजिए कि आप हिंदू या मुसलमान हैं और अमेरिका के किसी ऐसे हिस्से में रहते हैं जहां ईसाई कट्टरपंथी बहुत से लोग हैं। मान लीजिए कि अमेरिका के नागरिक होते

हुए भी आप मकान पर किराया नहीं चाहते। आपको कैसा महसूस होगा? क्या आपको गुस्सा नहीं आएगा? अगर आप इस भेदभाव के खिलाफ शिकायत करते हैं और जवाब देते हैं कि आप जाएं कि यह देश नहीं है, आप भारत लौटें, तो आप कैसे हैं? क्या आपको बुरा नहीं लगा? आपका यह गुस्सा दो रूप ले सकता है। एक, हो सकता है कि आपकी प्रतिक्रिया में यह कहा गया हो कि जहां हिंदू और अनुयायियों की समानता अधिक है वहां ईसाइयों के साथ भी इसी तरह का महत्व होना चाहिए। ये बदलाव लेने वाली बात है. या फिर आप यह राय बना सकते हैं कि आप सोशल साइट्स खरीद सकते हैं। इस सोच के आधार पर आप संघर्ष का रास्ता चुन सकते हैं, इस बात के लिए आवाज उठा सकते हैं कि धर्म और आस्था के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं होना चाहिए। यह विचारधारा इस सिद्धांत पर आधारित है कि धर्म से संबंधित किसी भी प्रकार का आचरण समाप्त होना चाहिए। यही सर्वशक्तिमान का मूलमंत्र है। इस अध्याय में हम यही चर्चा करेंगे कि भारतीय संदर्भ में इसका क्या अर्थ है।

इतिहास में हमें धर्म के आधार पर भेदभाव, बेदखली और विद्रोहियों के कई उदाहरण मिलते हैं। शायद आपने पढ़ा होगा कि हिटलर ने जर्मनी में यहूदियों पर किस तरह का अत्याचार किया। वहां कई लाख लोगों को केवल धर्म के आधार पर मार डाला गया था। लेकिन अब यहूदी धर्म को मानने वाले इजराइल में भी मुस्लिम और ईसाई अल्पसंख्यकों के साथ वांछनीय व्यवहार किया जा रहा है। सऊदी अरब में गैर–मुसलमानों को मंदिर या गिरजाघर बनाने की छूट नहीं है। न ही इन धर्मों के लोग वहां पूजा–पाठ के लिए किसी सार्वजनिक स्थल पर एकत्रित हो सकते हैं।

इन सभी उदाहरणों में एक धर्म के लोग अन्य धार्मिक संप्रदाय के लोगों के साथ या तो भेदभाव कर रहे हैं या उनका प्रचार कर रहे हैं। जब अन्य धर्मों के स्थान पर किसी एक धर्म को विशेष मान्यता प्रदान की जाती है तो भेदभाव की ऐसी घटनाएं और वृद्धि अधिक होती है। जाहिर तौर पर कोई भी व्यक्ति अपने धर्म के कारण से न तो भेदभाव का शिकार बनना चाहता है और न ही कोई अन्य धर्म का पूर्वाग्रह झेलना चाहता है।

16.7 सारांश

प्रायः किसी हिन्दी शब्दावली के साथ उसके अंग्रेजी शब्द से उसके भाव को समझने में सहायता मिलती है। धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को सामान्य शब्दों में व्यक्त किया गया है। धर्मनिरपेक्षता के सामाजिक व्यवहार एवं उसके प्रति प्रतिक्रिया को चिन्हित किया गया है। धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया विशेषताओं से यह और अधिक स्पष्ट हो जाता है।

अंत में प्रक्रिया एवं आधुनिक समाज के सह–संबंध को लिखा गया है ।

16.8 शब्दावली

- सेकुलर धर्मनिरपेक्ष या पंथनिरपेक्ष

- धर्मनिरपेक्ष समाज ऐसा समाज है जो उपयोगतावादी तथा तर्कसंगत मूल्यों पर अधिक बल देता हो, परिवर्तन एवं नवीन आचार–विचारों को अपनाने हेतु तत्पर हो, धर्मनिरपेक्ष समाज कहलाता है।

16.9 उपयोगी पुस्तकें

- बर्गर पीटर, एल 1969, द सोशल रिअलिटी ऑफ रिलीजन
- विलसन, ब्रायन, 1982, रिलीजन इन सोशियोलॉजिकल प्रास्पेक्टिव
- लुकमेन थॉमस, 1963, द इन विलिबल रिलीजन

16.10 बोध प्रश्न

- धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को तीन पंक्तियों में लिखिए?

  _____

  _____

- धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया की तीन विशेषताओं को लिखिए?

  _____

  _____

- धर्मनिरपेक्ष समाज को 50 शब्दों में समझाये?

  _____

  _____

- धर्मनिरपेक्षीकरण के आव यक तत्व निम्न में से कौन से है?

  (अ) विभेदीकरण की प्रक्रिया

  (ब) तार्किकता

  (स) धार्मिक संकीर्णता का ह्यस

  (द) उपयुक्त सभी

  उत्तर – (द) उपयुक्त सभी

- धर्म की दृष्टि से भारत एक .....राष्ट्र है।

  (अ) हिन्दू (ब) धर्म निरपेक्ष

  (स) धर्म सापेक्ष (द) विधर्मी

  उत्तर – (ब) धर्म निरपेक्ष

16.11 सन्दर्भ सूची

1. बाब लारेंस, 1986, रिडेमटिका एन्कनोटरह थी मैड्रन स्टाइल्स इन दी हिंदू ट्रेडिशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेसः दिल्ली
2. बाहम, ए.जे., 1958, फिलोस्फ़ी ऑफ बुद्धिज्म, राइडर एंड का लंदन
3. बापट, पी.वी., 1856, 2500 इयर्स ऑफ बुद्धिज्म इन इंडिया, प्रकाशन प्रभाग– भारत सरकारः नई दिल्ली
4. भट्ट जी.एस., 1968, बह्म समाज, आर्य समाज और डी चर्च सेक्ट टाइपोलोजी इन रिव्यू ऑफ रिलिजिस रिसर्च, 10/1; डि रेलिज़स रिसर्च एसोसिएशन कैनाकास (अमेरिका)
5. कैप्स, वाल्टर, एच.एस. 1990, डि न्यू रिलिजिस रीस्ट, यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ कैरोलिना प्रेसः कैरोलिना
6. कर्टिस, माइकल, 1981, रिलिज़न एंड पालिटिक्स इन द मिडिल ईस्ट। ईस्ट–वेस्ट न्यू प्रेसः कैलेरोडो
7. दुर्खाइम, ई, 1965 (1912), डि एलिमेंट्री फार्म्स ऑफ डि रिलिजस लाइफ, फ्री प्रेस न्यूयार्क
8. एल्विन वेरियट, 1955, डि रिलिजन ऑफ एन इडियन ट्राइब ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेसः दिल्ली